ॐ

परमात्मने नमः

दूसरा कुछ न खोज !

संपादक

पूज्य भाईश्री शशीभाई

भावनगर

प्रकाशक

वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्ट,

भावनगर-३६४००१

प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान :

वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्ट
५८०, जूनी माणेकवाड़ी,
भावनगर-३६४००१
फोन : (०२७८) २४२३२०७ / २५१५००५

गुरु गौरव
श्री कुन्दकुन्दकहान जैन साहित्य केन्द्र,
पूज्य सोगानीजी मार्ग, सोनगढ़

श्री आदिनाथ कुन्दकुन्द कहान जैन ट्रस्ट
विमलांचल, हरिनगर, अलीगढ़
फोन : (०५७१) ४१००१०/११/१२

श्री खीमजीभाई गंगर (मुंबई) : (०२२) २६१६१५९१
श्री डोलरभाई हेमाणी (कोलकाटा) : (०३३) २४७५२६९७
अमी अग्रवाल (अहमदाबाद) : (०७९) R-२५४५०४९२, ९३७७१४८९६३

प्रथमावृत्ति : प्रत : ५०००, द्वितीयावृत्ति प्रतः १०००
तृतीयावृत्ति : प्रत : ५०० (कुंदकुंदाचार्यदेव आचार्य पदवी दिन, ३१-१२-०७)

पृष्ठ संख्या : २४ + ४८ = ७२
लागत मूल्य : २०/-
विक्री मूल्य : १५/-

टाईप सेटिंग :
पूजा इम्प्रेशन्स
प्लोट नं. १९२४-बी,
६, शान्तिनाथ बंगलोझ
शशीप्रभु मार्ग, रुपाणी सर्कल के पास
भावनगर-३६४००१
फोन : (०२७८) २५६१७४९

मुद्रक :
भगवती ऑफसेट
१५/सी, बंसीधर मिल कंपाउन्ड
बारडोलपूरा,
अहमदाबाद
फोन : ९८२५३२६२०२

प्रकाशकीय

(तृतीयावृत्ति)

अनेकविध प्रयोजनभूत विषयों पर महापुरुषों के पावन बोधामृत मुमुक्षुओं को परम उपकारभूत होते हैं। इन्हींमें से ``मार्गदर्शन'' विषयक हितकारी वचनामृत का संकलन कर ``पथ-प्रकाश'' शीर्षक से फरवरी, १९८८ में प्रकाशित किया गया, जिसकी मुमुक्षु-समाज में बहुत सराहना हुई। ऐसे प्रकाशनों के प्रति मुमुक्षुओं की अभिरुचि व प्रमोदभाव देखकर, ट्रस्ट को इस तीसरे संकलन के प्रकाशनार्थ प्रेरणा मिली है।

मुमुक्षु के जीवन में किसी आत्मज्ञ सत्पुरुष-धर्मात्मा के प्रत्यक्ष समागम का सुयोग संप्राप्त हो तो, प्रवर्तमान हुण्डावसर्पिणीकाल का पंचम आरा भी चतुर्थ आरे से कहीं अधिक लाभप्रद सिद्ध हो सकता है। क्योंकि जो आत्महित अनंतकाल में नहीं हुआ, वह ऐसे सत्-योग से सहजमात्र में हो सकता है - ऐसा अतिशयकारी माहात्म्य प्रत्यक्ष-योग का है। - ऐसे अनुपमेय महितावंत मंगलकारी कल्पवृक्षमयी प्रसंग-विषयक वचनामृत, जो धर्मात्माओं के स्वयं की भावाभिव्यक्ति से अलंकृत हैं, उन्हें संग्रहित करके प्रस्तुत पुस्तक ``दूसरा कुछ न खोज !'' में प्रकाशित कर रहे हैं, मुमुक्षुओं को अति हितकर व प्रिय होंगे, ऐसी प्रशस्त आशा व भावना है।

प्रस्तुत पुस्तक में जिनके कल्याणकारी वचनामृत संकलित हैं, ऐसे-परम तारणहार प्रत्यक्ष सत्संगरूपी अमृत-प्रदाता पूज्य गुरुदेवश्री कहानजीस्वामी; प्रत्यक्ष-योग रहस्य प्रकाशक पूज्य कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी; आत्मज्ञ सत्पुरुष पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी; तथा अध्यात्ममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबहन के प्रति अत्यंत भक्तिभावपूर्वक वंदन करते हैं।

इस ग्रंथ के टाईप सेटिंग के लिये `पूजा इम्प्रेशन्स' एवं सुंदर मुद्रणकार्य के लिये मे. `भगवती ऑफसेट' के हम आभारी हैं।

अंत में, ``सत्पुरुष का योगबल सब का कल्याण करो'' - ऐसी मंगल भावना के साथ -

दि. ३१-१२-२००७
(कुंदकुंदाचार्य आचार्य पदवी दिन)

ट्रस्टीगण
वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्ट
भावनगर

विषय-प्रवेश

`दूसरा कुछ न खोज' - इस शीर्षक के अंतर्गत - मुमुक्षु जीव को, प्रत्यक्ष सत्पुरुष का समागम व सत्संग के महत्त्वसूचक महापुरुषों के वचनामृत, निज हित में उपयोगी हों - इसी भावना से संकलन कर, प्रकाशित किये हैं।

पूर्वके तद्नुकूल महत् पुण्य-योग से `सत्पुरुष का योग' जीव को अनंत काल में, दुर्लभ होने पर भी, अनेक बार हुआ है। परंतु उस योग के महत्व को नहीं समझने के कारण और स्वयं की बोध-बीज योग्य भूमिका व पात्रता नहीं होने से, वह योग / सत्संग निष्फल हुआ है। अतएव विषय-प्रवेश हेतु-निजावलोकनार्थ **पात्रता** व मुमुक्षु की **यथार्थ भूमिका** विषयक यत्किंचित विवरण यहाँ प्रस्तुत है -

जीव किसी बाह्यक्रिया-कांड से या शास्त्र-पठन से मार्ग प्राप्त नहीं कर सकता है, एकमात्र `पात्रता' से ही पाता है। अतः पात्रता का महत्व समझना योग्य है।

मुमुक्षु जीव-विचारवान जीव को सर्व प्रथम इस अति महत्व के विषय का गंभीरता से सांगोपांग विचार-मंथन कर, इसका, यथातथ्य मूल्यांकन कर, सर्व उद्यम से पात्रता में आना योग्य है; तभी मार्ग-प्राप्ति सुलभ होगी, मार्ग-प्राप्ति का अन्य कोई उपाय नहीं है।

कोई भी जीव जब निज-हित के लिए तत्पर होता है तो उसे पात्रता शीघ्र प्रगट होती है, तद्र्थ कोई पूर्व क्रम नियत नहीं है, यह इस मार्ग की बहुत बड़ी सुविधा है। ``**निज-हित की जितनी जरूरत-उतनी पात्रता विशेष**'' - यही पात्रता का परिमाण है। पात्रता

के लक्षण :-

१. जिसे एकमात्र निजस्वरूप के अतिरिक्त जगत से कुछ भी नहीं चाहिए - यह विशिष्ट प्रकार की पात्रता है।

२. सत्पुरुष के चरणों का इच्छुक, एकनिष्ठा से सत्पुरुष की आज्ञा शिरोधार्य करनेवाला ही वर्तमान पात्र है।

३. क्षयोपशमज्ञान से संमत किये बोध को शीघ्र प्रयोग में लानेवाला भी वर्तमान पात्र है।

४. 'स्वभाव' सुनते ही रुचि को पोषण मिले, वृद्धि होवे। स्वभाव को प्राप्त किये बिना कहीं भी चैन न पड़े, सुख न लगे, उसे लेकर ही छोड़े - ऐसी वृत्तिवाला जीव वर्तमान पात्र है।

५. पात्र जीव को स्वरूप विचार, चिंतन आदि चलने पर भी स्वानुभव के अभाव की खटक और असंतोष बना रहता है।

६. अनेक प्रकार के मोहासक्ति जन्य परिणाम होने पर उनमें उलझन का अनुभव होना, यह पात्रता का सूचक है।

७. गुण से उत्पन्न सुख की रुचिवाला और गुणग्राही।

८. उदयभाव में कहीं न रुचे, इसलिए उदयभावों में ज़ोर - उत्साह का अभाव।

९. जिसको दर्शनमोह मंद (शिथिल) होनेसे पदार्थ के यथार्थ निश्चय करने की क्षमता प्रगट हुयी हो।

१०. शास्त्रवचनों की यथार्थ जानकारी सहित यथायोग्य स्तर के व्यवहार-परिणाम होने पर भी उनका रस न चढ़ जावे, ऐसी जाग्रति वर्तती हो।

११. जगत की मान-सन्मानवाली वस्तुओं और बातों-प्रसंगों की महिमा जिसे न आती हो।

१२. उपकारी सत्पुरुष के प्रति अत्यंत भक्तिवंतता।

१३. विषय-कषाय के तीव्र-अहितरूप परिणाम होने पर जिसे घबराहट होती हो।२

१४. प्रयोजनभूत व अप्रयोजनभूत विषयों का अंतर समझने की क्षमतावाला।

१५. अप्रयोजनभूत विषयों के प्रति उपेक्षा-उदासीनता वर्तती हो व प्रयोजनभूत विषयों की गहराई से गवेषणा हेतु तत्परवृत्तिवंत और निज प्रयोजन को सिद्ध करने का पुरुषार्थी।

१६. प्रतिकूल प्रसंग में जिसके परिणाम खराब-कुमार्गगामी न हो और सहज आत्महित में जाग्रत रहे।

१७. भवभ्रमण-भीतिवंत अर्थात् स्वयं के प्रति (जन्म-मरण के दुःख की) जिसे दया (स्वदया) उत्पन्न हुयी हो।

१८. आत्म-लक्ष्यी परिणामवाला।

१९. भावना-प्रधान परिणामवाला, अर्थात् भीगा हुआ - सिक्त हृदयवंतस्वरूप की अपूर्व भावनावाला।

२०. मध्यस्थ-निष्पक्ष ज्ञान का गवेषी व मात्र सत्य का आग्रही तथा अभिलाषी।

२१. स्वरूप-भावनापूर्वक अंतर में मार्ग का शोधक - भवचक्र से छूटने के मार्ग की शोध करनेवाला।

२२. स्वयं की गुरुता का गोपन करनेवाला।

२३. उदय-प्रसंगों में अपना समय बरबाद न करनेवाला।

२४. परमार्थ की बात सुनते ही चोंट-गहरी चोंट लगनेवाला।

२५. निरंतर सत् की शोधकवृत्तिवाला।

२६. भव का अभाव किये बिना आयु व्यतीत होने की चिंता-खेद के परिणाम होना।

- इसके अतिरिक्त मुमुक्षु की **यथार्थ भूमिका,** जो धर्म-प्राप्ति के

लिए अति महत्वपूर्ण है, विषयक लक्षणों का विवेचन स्वहितार्थ अवगाहन हेतु यहाँ संक्षेप में प्रस्तुत है :-

१. जिसे एक मात्र मार्ग-प्राप्ति का ही लक्ष्य हो।

२. जिसे अनंत जन्म-मरण से - परिभ्रमण से मुक्त होने की वेदना सहित अपूर्व जिज्ञासा उत्पन्न हुयी हो।

३. जिसका संयोगी पदार्थों की प्राप्ति का ध्येय न हो; परंतु परिपूर्ण शुद्ध (निष्फलंक) दशा प्राप्त करने का ध्येय हो।

४. अंतर की गहराईमें से स्वरूप प्राप्ति की अपूर्व भावना, जिसकी उत्पत्ति में कोई रागद्वेष की भूमिका न हो - ऐसी वीतरागी भावभूमिका (अभिप्राय) के आधार से उदित हुयी भावनावाला।

५. पूर्णता के ध्येय-प्रति पूरी लगन से प्रवर्तन करना।

६. अत्यंत उत्साह और दृढ़ निश्चयपूर्वक आगे बढ़ने की प्रवृत्तिवाला।

७. `पूर्णता के लक्ष्य से शुरूआत' के अभिप्राय से निज-प्रयोजन के प्रति सहज, सूक्ष्म और तीक्ष्ण दृष्टिपूर्वक प्रवृत्ति होना।

८. सम्यक्त्व की पूर्व भूमिका में-स्वभाव-अनुलक्ष्यी उच्चकोटि के शुभ विकल्प होने पर भी, अनुभूति का अभाव होनेसे, अंतर में उसकी खटक रहना।

९. परिणति में राग-रसरूप रंजितपना घटने से व दर्शनमोह-रस शिथिल होनेके कारण - मुमुक्षु के योग्य भूमिका का ज्ञान निर्मल होनेसे, सत्पुरुष के वचनों-शास्त्र वचनों के अवगाहन में यथार्थता, अध्यात्मतत्त्व का रस और रुचि आदि का होना।

१०. स्वकार्य की उत्कंठा।

११. उदय-कार्य बोझारूप लगे। प्रवृत्ति करनी पड़े तो उसमें त्रास/ थकान लगे और अरुचि के कारण उदय जनित परिणाम

का बल मंद होता जाए।

१२. सत्समागम में प्रयोजनभूत विषय आनेपर रस वृद्धिगत हो जाए।

१३. अंतर-संशोधन-अंतर-अवलोकनपूर्वक तत्त्वज्ञान का अभ्यासी।

१४. `इस जगतमें से कुछ भी नहीं चाहिए, मात्र एक आत्मा ही चाहिए' - ऐसा दृढ़वृत्तिवंत।

१५. तत्त्वज्ञान-समझन / वाच्य को शीघ्र प्रयोग की सान (कसौटी) पर चढ़ाकर, अपनी समझ को यथार्थ करने में रत रहना।

१६. उदय के कार्यों में (करने पड़े, उनमें) अपना अमूल्य जीवन व्यर्थ ही नष्ट हो रहा है - ऐसा लगना/अभिप्राय रहना।

१७. वर्तमान परिणमन में मार्ग की समीपता आदि विकास होने पर भी, पूर्णता का लक्ष्य होनेसे, उससे संतोष नहीं हो; बल्कि प्राप्त गुण गौण हो जायें और उच्च दशा/पूर्णता की अभिलाषा तीव्र होती जाए।

१८. गुणों की ही महिमा और मुख्यता रहे।

१९. स्वरूप की गहरी जिज्ञासावश सर्व उदयप्रसंगों में चित्त न लगना और नीरसवृत्ति रहना।

२०. तीव्र और गहरी रुचिपूर्वक प्रयोजनभूत विषय को सूक्ष्म उपयोग से ग्रहण करनेवाला।

२१. मूल वस्तुस्वरूप को गहन मंथनपूर्वक समझने की पद्धति से जिसकी आत्मरुचि पुष्ट हो।

२२. सत्पुरुषों के वचनों में सन्निहित अनुभव की विधि की गंभीरता को गहन चिंतनपूर्वक शोधने की वृत्तिवाला हो और जिससे सत्पुरुषों के वचनों में छिपे हुए पारमार्थिक रहस्य को समझने की क्षमता हो। सत्पुरुषों की अंतर परिणति की पहचान से जिसे उनकी महिमा

हृदयंगम हुई हो।

२३. संपूर्ण शक्ति द्वारा (शक्ति का गोपन किये बिना) समग्ररूपसे, वेग से, उल्लासपूर्वक प्रयत्नवान/पुरुषार्थी।

२४. भेदज्ञान का प्रयास करनेवाला हो, और जब उसे विकल्प-मात्र में अंतर से दुःख का वेदन होने लगा हो, और उसके परिणाम में आत्मस्वभाव के विकल्प से भी हटने का ढलन उत्पन्न हो गया हो। (- यह स्थिति अनुभव के समीपवर्ती जीव की होती है)।

२५. उदयभाव भाररूप लगे, जिससे किसी भी प्रसंग में उसे कहीं न रुचता है।

२६. स्वकार्य ``पीछे करूँगा'' - ऐसा प्रकार परिणाम में न रहना; बल्कि अभी ही होता हो तो... बिना विलंब किये तत्पर होना, अर्थात् शीघ्रता-सावधानी में ``पीछे करूँगा'' ऐसा अरुचि-सूचक प्रकार का न होना।

२७. प्रत्यक्ष-योग में सत्पुरुष के सर्व विकल्प का अनुसरण करने का भाव रहे, एक निष्ठा से आज्ञा का आराधन करने के भाव रहे, अर्थात् सर्वार्पणबुद्धि से वर्तता हो।

२८. स्वयं को गुण-प्राप्ति की अभिलाषा होनेसे - अन्य में गुण दिखलाई दें....तो उसके प्रति सहज प्रमोदभाव होना।

२९. अंतर में निवृत्त होकर स्वकार्य करने का संकल्पी व उत्साही।

३०. सैकड़ों-हजारों विकल्पों की परंपरा का मूल (सर्जक) अब्रह्मचर्य है, अतएव विकल्प-जाल की वृद्धि रोकनेवाले - ऐसे ब्रह्मचर्य की चाहवाला।

३१. अपने दोष टालने के दृष्टिकोणपूर्वक - अपने दोष को अपक्षपातरूप से देखने की प्रवृत्ति होना। ज्ञान में ऐसी मध्यस्थता हो कि जिससे स्वच्छंद उत्पन्न न हो सके।

३२. जिसे एकांतवास प्रिय हो। (क्योंकि बहुजन परिचयवृत्ति आत्मसाधना के प्रतिकूल है)।

३३. आहार-विहार-निहार का नियमी हो - जिसके कारण देहाश्रित बाह्यभाव नियमित (मर्यादित) होवे। उपर्युक्त विषय में अनियमितता-तीव्र राग रस को लेकर प्रवर्तती है - ऐसे प्रकार का अभाव हो; क्योंकि 'आत्मार्थी सहज वैराग्यवान होता है।'

३४. आत्मार्थी जीव सामान्य जनों से विशेष योग्यतावान होने पर भी वह मान-प्रसिद्धि से दूर रहना चाहता है और अपनी महत्ता का सहज गोपन करता है।

३५. जिसे मोक्ष और मोक्षमार्ग का महत्व वास्तविकरूप में समझ में आया हो। (चारोंगति के सर्व दुःख से निवृत्ति और अनंत समाधिसुखरूप मोक्षदशा की व उसके साधनरूप मोक्षमार्ग की कीमत समझकर जिसे उनके प्रति आदरबुद्धि उत्पन्न हुई हो)।

३६. आत्म-जाग्रति का उत्पन्न होना, अर्थात् जाग्रतिपूर्वक निजभावों का सूक्ष्मरूप से अवलोकन होनेसे पर-रस/राग-रस में कमी होना।

३७. शास्त्रों में आनेवाले सभी न्यायों वे अनेक अपेक्षित कथनों और विभिन्न प्रकार की कथन-विवक्षाओं को निज-प्रयोजन की दृष्टिपूर्वक समझने की पद्धति का होना। (जिससे समझ में विपर्यास या अन्यथापन न हो सके)।

३८. स्वकार्य करने की छटपटाहट/तड़फन के कारण अन्य उदयमान प्रसंगों में निरुत्साहीभाव से जुड़ना/भाग लेना।

३९. गति-निःशंकता, अर्थात् आगामी भव में नीच गति नरक या तिर्यंच होने संबंधी शंका भी जिसे न पड़े, अपितु स्वयं की मुक्तदशा की योग्यता विषयक निःशंकता वर्ते।

४०. जिसे अन्य द्रव्य-भाव में सुख की कल्पना का स्वरूप/

कारण भलीभाँति समझ में आया हो, और तद्‌र्थ निवृत्ति हेतु प्रयत्नवान हो; जिससे जगत के किसी पदार्थ में गहरे-गहरे तनिक भी सुख की कल्पना/वासना न रह जाये अथवा कोई भी इन्द्रिय विषय की `अपेक्षा' परिणति में न रहा करे। वैसे ही शुभपरिणामों में या सातावेदनीय के उदय काल में `आश्रयबुद्धि' न रह जाये।

४१. `स्वच्छंद' महादोष है, जो आत्मार्थी की भूमिका को नष्ट करनेवाला है - जिसके लक्षणों को अनेक पहलूओं से समझकर - उनको टालने का, अथवा उस प्रकार के (स्वच्छंद-जन्य) परिणाम जिसे न रहते हों उनका, यत्किंचित् विवरण निम्न है :-

१. पर-लक्ष्यी शास्त्रज्ञान के क्षयोपशमवश ``मैं समझता हूँ'' - ऐसा अहंभाव, तथा इस प्रकार के अहंभाववश ज्ञानी के वचनों की तुलना अपने सदृश करनी।

२. स्वयं के दोष का पक्ष/बचाव करना अथवा अन्य के दोष का, राग-ममत्ववश पक्ष/समर्थन/बचाव करना।

३. सत्पुरुष के वचन में भूल देखने या भूल ढूँढ़ने के परिणाम होना।

४. सत्पुरुष के वचन में शंका होना।

५. `मान-प्रकृति' - जहाँ-जहाँ मान प्राप्त हो वहाँ-वहाँ आकर्षण रहे या रुचे। मानार्थ-मन-वचन-काय की प्रवृत्ति होना। समाज की मुख्यतावश आत्मसाधन गौण करना (इसे शास्त्र में लोकदृष्टि बताया है)। जहाँ बहुमान हुआ हो या होता हो उस समूह में अपना मान-स्थान बना रहे - ऐसा अभिप्राय या परिणति रहे। तद्‌नुसार शुभ (?) अथवा अनैतिक-अशुभ प्रवृत्ति स्वच्छंद तीव्र होने पर होती है।

६. सत्पुरुष के उपकार की अवहेलना करना।

७. सत्पुरुष के वचनामृत-प्रति अचल प्रेम का अभाव होना।

८. विद्यमान सत्पुरुष के प्रति परम-विनय-अत्यंत भक्ति का अभाव। (मात्र सामान्य विनय भी `योग्य नहीं है।')

९. सत्पुरुषों के उदयभावों - प्रवृत्तियों का लक्ष्य कर - उस संबंध में अपने समान कल्पना करना।

१०. सत्पुरुष के बाह्य आचरणमें से चारित्रमोहजन्य दोष को मुख्य करना।

११. बाह्यज्ञान - शास्त्र की धारणा के प्रति प्रेम/झुकाव/मुख्यता होना। (इससे मार्ग की अंतर में सूझ नहीं पड़ती है)।

- उपर्युक्त प्रकार के परिणाम स्वच्छंदता की तीव्रता या मंदता की विद्यमानता के द्योतक हैं।

४२. असरलता, हठाग्रह और जिद आदि के परिणाम न रहना। क्योंकि परम सरलतारूप अंतर्मुखी वलन में असरलतादि भाव अवरोधकरूप हैं।

४३. क्षयोपशम विशेष हो तो भी बड़प्पन की आकांक्षा नहीं रहे।

४४. परंपरा और क्रिया-कांड का आग्रही न हो।

४५. ज्ञानी के वचनों का कल्पित अर्थघटन नहीं करना।

४६. सत्पुरुष से विमुख वर्तन किसी भी कीमत पर स्वीकार नहीं हो, तदर्थ अपकीर्तिभय-समाजभय आदि सर्व को गौण करे। इस संदर्भ में पूज्य श्रीमद् राजचंद्रजी का उपदेशामृत उल्लेखनीय है - ``प्रत्यक्ष सत्पुरुष से विमुख वर्तना अथवा उपेक्षितभाव से वर्तना, यह प्रगट अनंतानुबंधी कषाय है।''

४७. प्रमाद, अर्थात् स्वकार्य हेतु उल्लसित वीर्य का अभाव रहना - ऐसे में परिणाम ऊपर-ऊपर से तो शांत (कषाय की मंदतावाले) दिखाई देते हैं, पर वे कषाय के भार से प्रमादी हैं। - ऐसे प्रमादी परिणाम न रहना।

४८. शास्त्र-अध्ययन, तत्त्व-श्रवण, तत्त्व-चर्चादि में ऐसा प्रकार न हो कि जिससे विकल्प वृद्धिगत हो जाएँ; और अधूरा निश्चय, अपरिपक्व विचारदशापना, शंकाशीलता या विभ्रम उत्पन्न हो, कुतर्क सूझे या भावों में डाँवाडोलपना / चंचलता रहे।

४९. लौकिक और शास्त्रीय अभिनिवेश से दूर रहे, जिसका स्वरूप निम्न है :-

१. **लौकिक अभिनिवेश :-** लोक में जो-जो वस्तुएँ या बातें बड़प्पन के साधनरूप कारणों में गिनी जीती हैं - उनमें माहात्म्यबुद्धि होना लौकिक अभिनिवेश है।

२. **शास्त्रीय अभिनिवेश :-** आत्मार्थ के सिवाय अन्य किसी भी प्रकार की शास्त्रीयमान्यता-शास्त्रज्ञान-धारणाज्ञान आदि में संतुष्ट होना अथवा अप्रयोजनभूत विषयक ज्ञान से अपनी महत्ता-पोषण से आत्मार्थ गौण हो जाना - (प्रशस्त) शास्त्रीय अभिनिवेश है। और विद्यमान सत्पुरुष के समागम को गौण कर अपने शास्त्र-अध्ययन की तुलना तद्समान करना अथवा शास्त्र को ऊँचे गुणस्थानवर्ती पुरुष के वचन मानकर, विशेष वजन देना - (अप्रशस्त) शास्त्रीय अभिनिवेश है। (उल्लेखनीय है कि यहाँ शास्त्र की मुख्यता होते हुए भी ``अप्रशस्त'' विशेषण लगाना, वचन-गंभीरता है। क्योंकि ऐसे भावों में वर्तनेवाले जीव को अवश्य ही कोई न कोई अप्रशस्त (लौकिक) प्रयोजन (आशय) प्रवर्तता है - ऐसा ज्ञानीपुरुषों का आकलन/निर्धारण-विशिष्ट विधान है, जो सिद्धांतरूप है।)

५०. ज्ञानस्वभावी आत्मा ``मात्र ज्ञान'' से ही ग्राह्य है / अनुभव योग्य है। इसके सिवाय अन्य कारण से - कोई भी प्रकार के शुभराग या पराश्रित बाह्यज्ञान से ग्रहण योग्य नहीं है। अभिप्राय में उक्त ``विधि'' विषयक तनिक सा भी अंतर हो तो वहाँ विपरीत

अभिनिवेश हो जाता है। परंतु यथार्थता में ``विधि'' संबंधी विपरीतता नहीं रहती है।

५१. `विपरीतता का परिहार होने पर ही यथार्थपने की सिद्धि, अर्थात् उपलब्धि होती है' - जिसकी जाग्रति सतत रहे, अर्थात् विपरीत अभिनिवेश रहित पूर्वक देव-गुरु-शास्त्र-सत्पुरुष के प्रति वर्तन रहना। इसी भाँति अतत्त्व में तत्त्वबुद्धि अथवा एक तत्त्व में अन्य तत्त्व का अध्यास (अन्यथा भासित होना) विपरीत अभिनिवेश को प्रदर्शित करता है। परंतु यथार्थता में ऐसा प्रकार नहीं होता है। उसे तो -

कुदेव में देवबुद्धि-लाभबुद्धि नहीं होती। सर्वज्ञ व उनकी प्रतिमाजी की स्थापनादि के प्रति अनादर, अविवेक या निषेध नवकोटिपूर्वक नहीं आता। क्योंकि कोई भी लौकिक कारणवश उनके निषेध-अवगणना के भाव में तीव्र मिथ्यात्वरूप महादोष उत्पन्न हो जाता है।

ऐसे ही भावलिंगी गुरु के अतिरिक्त किसीमें भी गुरुबुद्धि नहीं होती है। द्रव्यलिंगी या लिंगाभासी अथवा अन्यलिंगी के प्रति पूज्यबुद्धि-धर्मबुद्धिपूर्वक किसी भी योग से प्रवृत्ति नहीं होनी चाहिए, क्योंकि ऐसी प्रवृत्ति विपरीत अभिनिवेश-सूचक है।

इसी भाँति सत्शास्त्र और कुशास्त्र का विवेक वर्तता है। कुशास्त्र, अन्यमत के शास्त्र अथवा मिथ्यादृष्टि द्वारा रचित शास्त्र के प्रति श्रद्धाविनय रख कर, सत् शास्त्र पढ़े-सुने तो वह भी विपरीत अभिनिवेशयुक्त प्रवृत्ति है।

इसी प्रकार सत्पुरुष के प्रति श्रद्धा-विनय रखते हुए भी असत्पुरुष में, उनके वचन में श्रद्धा-विनय करने से अयथार्थता, अर्थात् विपरीत अभिनिवेश की उत्पत्ति होती है। परंतु यथार्थ भूमिकावाले का ऐसा वर्तन नहीं होता है।

५२. संदिग्ध अवस्था का न रहना। संदिग्ध अवस्थावश -

ज्ञानप्राप्ति हेतु अनेक ग्रंथों के अध्ययन से कई प्रकार के संदेह का उद्‌भव होता है, फलस्वरूप प्रयोजनभूत विषय के प्रति लक्ष्य नहीं जा पता है; प्रायः अप्रयोजनभूत विषय पर वजन रहता है और उन्हीं में उलझ/ अटक जाता है। संदिग्ध अवस्था की स्थिति में - सत्पुरुष का प्रत्यक्ष समागम होते हुए भी उनकी पहिचान नहीं हो पाती। गहरे-गहरे सत्पुरुष के मन-वचन-काययोग - उदयजन्य परिणाम के प्रति संदेह (शल्य) रहता है, अथवा कहीं कोई अविश्वास - अप्रतीतियोग्य बात लगती है, खटकती है।

५३. ज्ञान के भेद-प्रेभद में (- गुणभेद, पर्यायभेद, अनेक प्रकार के न्याय, नयज्ञान, कर्मबंध-उदय सत्ता आदि के भेदों में) रुचि होनेसे `अभेद' - `परमार्थ' विषय में रस न उत्पन्न होना - ऐसा प्रकार जिसे न हो।

५४. शास्त्र के धारणाज्ञान-बाह्यज्ञान से स्वयं में ज्ञान-प्राप्ति मान लेना, सम्यक् परिणमन के अभाव में भी स्वयं की महत्ता-विशिष्टता मानना अथवा अन्य कोई ऐसा माने (वर्तन करे) तो रुचना और अपने ज्ञान के प्रदर्शन के भाव रहना - इत्यादि प्रकार का अतिपरिणामीपनारूप दोष जिसे न प्रवर्तता हो।

५५. ज्ञान के क्षयोपशम में निश्चय-व्यवहार आदि समझ में आने पर भी जहाँ तक मार्ग की विधि स्वयं को ग्रहण न हो अथवा साक्षात् अनुभूति न हो वहाँ तक जिज्ञासा का अभाव न वर्ते।

५६. देव, गुरु, शास्त्र और सत्पुरुष विषयक किसी भी प्रवृत्ति में स्वयं के मान का लक्ष्य न रहे, न होवे। पूज्य श्रीमद्‌जी का वचनामृत अनुकरणीय है - ``निंदा प्रशंसार्थे विचारवान जीव प्रवृत्ति न करे।''

५७. क्रिया-संबंधी मिथ्या आग्रह न हो कि जिससे असत् अभिमान

अर्थात् देहात्मबुद्धि दृढ़ हो जाए और व्रत-संयमादि की दैहिकक्रिया को आत्मक्रिया समझ लेने से असत् में सत् का अध्यास हो जाए। अथवा मानार्थे कोई बाह्यक्रिया की प्रवृत्ति न हो।

५८. बाह्य अनुकूलता (पुण्य के फल) की अभिलाषा से अथवा सिद्धि मोहरूप निदान-भावपूर्वक क्रिया नहीं करे।

५९. बहिर्लक्ष्यी जानकारी हेतु अथवा अन्यथा प्रकार से तत्त्व का ग्रहण होनेसे अकेला (भाव-भासन या ज्ञान-रस बिना का) अध्यात्मचिंतवन अर्थात् शुष्क आध्यात्मिकता-सिर्फ विकल्प और अध्यात्मभाषा शैली का रस या वाणी का रस है - पौद्गलिक-रस है, जो कि अध्यात्म का व्यामोह है। यथार्थ भूमिकावाले को ऐसी अयथार्थता नहीं होती।

- उपर्युक्त सर्व विवेचन का तात्पर्य यही है कि कहीं अंश मात्र भी विपर्यास नहीं रहे, ऐसी पूर्व भूमिका ``महान सम्यक्त्व'' योग्य होना अपेक्षित है। क्योंकि `पात्र के बिना वस्तु नहीं रहती, पात्र में ही आत्मज्ञान होता है।' इसी गहन तथ्य का निर्देश स्वानुभवविभूषित प्रशममूर्ति धर्मात्मा पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन ने अपने एक पत्र में किया है, जो अवधारणीय है - ``**हम लोक समकित...समकित तो करते हैं परंतु योग्यता व पात्रता के बिना समकित किसमें समायेगा ?**'' अतएव सुस्पष्ट है कि पात्रता और यथार्थ भूमिका में आये बिना सम्यक्त्व - प्राप्ति की आशा निरर्थक है, आकाश-कुसुमवत् है।

तदुपरांत विद्यमान सत्पुरुष का योग, उल्लिखित भूमिका में आए हुए आत्मार्थी के लिए किसी भी प्रकार से मूल्यांकन न किया जा सके ऐसा उपकारी प्रसंग है। यहाँ **सत्संग-सत्पुरुष के प्रत्यक्ष योग और उसके माहात्म्य** विषयक किंचित् उल्लेख किया जा रहा है, जो अंतर गवेषणीय है -

जो जीव, संसार परिभ्रमण से छूटने हेतु मार्ग की शोध में हो उसे `मार्ग' सत्पुरुष की वाणी में प्रकाश-सदृश मिलता है। सत्पुरुष आत्मानुभवी पुरुष की वाणी में ही `मार्ग-प्राप्ति की विधि' प्रकाशित होती है, अज्ञानी की वाणी में विधि का प्रकाशन संभव नहीं होता। इसीलिए जिसे `मार्ग की शोध' वर्तती हो - उसे सत्पुरुष से `मार्ग' निःसंदेह प्राप्त होता है। ऐसे जीव को ही सत्पुरुष की पहचान, अंतर परिणति द्वारा होती है और उसे उनकी यथातथ्य महिमा आती है।

यद्यपि अनादि काल से परिभ्रमण करते हुए जीव को अनेकबार सत्पुरुष का योग प्राप्त हुआ, तथापि उक्त प्रकार से उनकी पहचान नहीं हुई। ओघे-ओघे ``ये ज्ञानी हैं'' ऐसा स्वीकारा, बहुमान भी किया; परंतु वह वास्तविक महिमा नहीं है। यदि पहचानपूर्वक बहुमान-महिमा आवे तो जीव अवश्य ही भवबंधन से छूटकारा पा जाए। ``मार्ग की शोध'' - यह विशेष प्रकार की पात्रता है। - ऐसी पात्रता के अभाव में `ज्ञानी' पहचाने नहीं जाते।

सत्पुरुष के वचन में `जीव का आत्महित हो' वैसा परिपूर्ण निमित्ततत्त्व होता है। आत्मलक्ष्य - स्वरूपबोध हेतु अचूकरूप से वे निमित्त होते हैं। जिस जीव की तथारूप पात्रता, अर्थात् योग्य तैयारी हो तो निश्चितरूप से कार्य-सिद्धि होती है।

अहो ! निज पूर्ण वीतराग स्वभाव ऊपर के दबाव/ज़ोरमें से प्रगट हुई वाणी ! - ऐसी वाणी अमोघ-रामबाण तुल्य है, वह निष्फल कैसे जाए ? उसकी सफलता के साथ कुदरत बँधी हुई है। इसीलिए यह वाणी भी (व्यवहार से) पूज्य है।

``**सत्संग नित्य आराधनीय है**'' सत्पुरुष की ऐसी सीख जीव को अत्यंत हितकारी और गिरतीवृत्ति को स्थिर रखनेवाली है। वर्तमान

दु:षम काल में असत्प्रसंगों का घिराव-फैलाव विशेष है, जीव सहजमात्र में कुसंग के प्रभाव में आ जाता है - जिससे दीर्घ काल पर्यंत आराधित सत्संग निष्फल होने में समय नहीं लगता। आराधना के लिए तो अपूर्व पुरुषार्थ और उसकी सतत लगन ही आवश्यक है।

`सत्' का प्रगट अनुभव जिन्हें वर्तता है - ऐसे पुरुष का समागम - वह `सत्संग' है, जो अति दुर्लभ है। फिर भी, उस सत्संग के निष्फल होनेके कारणरूप परिणामों में जीव वहान रखता है, तब रत्नचिंतामणि - तुल्य मनुष्यभव खो देने, हार जाने की स्थिति बनती है। सत्संग के निष्फल हो जाने के मुख्य कारण हैं - मिथ्याआग्रह, स्वच्छंदता, प्रमाद, इन्द्रिय-विषयों की अपेक्षा और अपूर्व भक्ति का अभाव।

मिथ्याआग्रह :- पूर्व ग्रहण किये/निश्चय किये हुए मिथ्या अभिप्राय का आग्रह यदि जीव न छोड़े तो प्राप्त सत्संग निष्फल हो जाता है।

स्वच्छंदता :- जीव को सत्समागम की उपासना अत्यंत गरजवान होकर करना योग्य है। वैसे (गरजमंदपने के) भाव का अभाव स्वच्छंद के सद्भाववश होता है, जिसके कारण प्राप्त सत्संग फलीभूत नहीं होता है।

प्रमाद :- सत्पुरुष का बोध असिधारा-सदृश है। परंतु दर्शनमोह के बलवानपने के कारण सत्समागम में श्रवण-अवधारण किये बोध का प्रभाव नहीं होता है - जिसे यहाँ प्रमाद-संज्ञा दी गई है। ऐसी स्थितिवश काल का साधारण तत्त्व-विचार अथवा मंद कषायरूप प्रवृत्ति में निर्गमन हो जाता है और सत्समागम की अभीष्ट-सिद्धि नहीं होती अर्थात् आत्मा बोध नहीं पाता है। (प्रमाद काल में श्रवण करने पर `चलता हुआ बोध' नीरस/निरुत्साही भाव से श्रवण होता है; जब

कि ऐसे अवसर पर तो परम प्रसन्न और उल्लसित चित्त पूर्वक, अत्यंत रससे सत्श्रवण करना ही योग्य है।)

इन्द्रिय-विषयों की अपेक्षा :- सत्समागम में इन्द्रिय-विषयों के प्रति सहज नीरसता वर्तना योग्य है; क्योंकि सत्समागम में तो अतीन्द्रिय चैतन्यरस `निर्विकार स्वभाव की भावना' का बारंबार आविर्भाव होने का प्रसंग बनता है। तब भी, विषयों की उपेक्षा न रहे तो वहाँ तीव्र मोह/आसक्ति वर्तती है, जो सत्संग को सफल नहीं होने देती।

अपूर्व भक्ति का अभाव :- सत्संग में एक निष्ठा और अपूर्व भक्ति का जितने अंश में अभाव - उतने ही अंश में सत्संग की निष्फलता है।

तदनन्तर उल्लेखनीय है कि अनंत काल से स्वरूप का/स्वभाव का परिचय न होनेसे जीव की अवस्था में विभाव सहज हो गया है, इसलिए सुदीर्घ काल पर्यंत सत्संग में रहकर, `**बोध-भूमिका**' उत्पन्न होने पर `विभाव की साधारणता' टलती है और स्वरूप के प्रति सावधानी आती है।

मुमुक्षु जीव को स्वयं में योग्यता आविर्भूत हो-तदर्थ विचारणा होनी चाहिए, जिसका मुख्य साधन आत्म-लक्ष्यपूर्वक **सत्संग** है।

अंततः **सत्पुरुष का योगबल** सभी जीवों को कल्याणकर हो - इसी भावना के साथ -

शशीकांत म. शेठ

(संपादक)

पहली ये शरत है कि मुझे दूसरी कोई चीज नहीं चाहिए, `मुझे एक आत्मा ही चाहिए' - ऐसा दृढ़ निश्चय होना चाहिए। दुनिया की कोई चीज, पैसा, आबरू आदि कोई नहीं लेकिन एक आत्मा ही मुझे चाहिए - ऐसा दृढ़ निश्चय होना चाहिए।

-पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

देव-गुरु-शास्त्र ऐसा कहते हैं कि भाई तुझे तेरी महिमा भासित हो तो उसमें, हमारी महिमा तो हो ही जाती है। तुझे तेरी महिमा तो भासित होती नहीं, तो तुझे हमारी भी यथार्थ महिमा भासित नहीं हुई - तूँने हमें पहचाना ही नहीं। (परमागमसार - १०१)

अहो !
सर्वोत्कृष्ट शांत रसमय सन्मार्ग-
अहो !
उस सर्वोत्कृष्ट शांत रसप्रधान मार्ग के मूल सर्वज्ञदेव; -
अहो !
उस सर्वोत्कृष्ट शांतरस को जिन्हों ने सुप्रतीत कराया ऐसे परमकृपालु सद्गुरुदेव-
इस विश्व में सर्वकाल आप जयवंत रहे, जयवंत रहे।

- श्रीमद् राजचंद्र

अहो ! जिसके आनंद के एक क्षण के (रसास्वाद) के आगे तीन लोक का सुख विष सम लगे - जहर जैसा लगे - तिनके-समान तुच्छ लगे - भगवान आत्मा तो ऐसा है। १९९)

□

ओहो हो ! आत्मा तो अनंत विभूतियों से मंडित अनंत गुणों की राशि, अनंत गुणों का विराट पर्वत है। वह सर्वांग पूर्ण गुणमय ही है, उसमें एक भी अवगुण नहीं। ओहो ! ``यह मैं'' - ऐसे आत्मा के दर्शन के लिए जीवने कभी सच्चा कौतूहल किया ही नहीं। ३३६.

`मैं ज्ञानमात्र हूँ'

सुखधाम अनंत सुसंत चही,
दिनरात रहे तद्ध्यान महीं;
प्रशांति अनंत सुधामय जे,
प्रणमुं पद ते वरते जयते.

पावन मधुर अद्भुत अहो ! गुरुवदनथी अमृत झर्यां,
श्रवणो मळ्यां सद्भाग्यथी नित्ये अहो ! चिद्रस भर्यां.
गुरुदेव तारणहारथी आत्मार्थी भवसागर तर्यां,
गुणमूर्तिना गुणगणतणां स्मरणो हृदयमां रमी रह्यां.

हुं एक, शुद्ध, सदा अरूपी, ज्ञानदर्शनमय खरे;
कंई अन्य ते मारुं जरी, परमाणुमात्र नथी अरे.

सहजात्मस्वरूप सर्वज्ञदेव परमगुरु

ॐ

श्री परमात्मने नमः

दूसरा कुछ न खोज

[`श्रीमद् राजचंद्र' ग्रंथमें से उद्धृत रत्न]

सत्संग सर्व सुख का मूल है।
सत्संग का सामान्य अर्थ यह कि उत्तम का सहवास।
जहाँ सत्संग नहीं वहाँ आत्मरोग बढ़ता है।
सत्संग आत्मा का परम हितैषी औषध है।

(शिक्षापाठ : २४, १७वाँ वर्ष)

सत्पुरुष कहते नहीं, करते नहीं, फिर भी उनकी सत्पुरुषता निर्विकार मुखमुद्रा में निहित है। (वचनामृत : १२२, २०वाँ वर्ष)

सत्संग का लेश अंश भी न मिलने से बिचारा यह आत्मा विवेकविकलता का वेदन करता है। (पत्रांक : ३५, २१वाँ वर्ष)

शास्त्र में मार्ग कहा है, मर्म नहीं कहा। मर्म तो सत्पुरुष के अंतरात्मा में रहा है। (पत्रांक : ५८, २२वाँ वर्ष)

परमात्मा का ध्यान करने से परमात्मा हुआ जाता है। परंतु आत्मा उस ध्यान को सत्पुरुष के चरणकमल की विनयोपासना के बिना प्राप्त नहीं कर सकता, यह निर्ग्रंथ भगवान का सर्वोत्कृष्ट वचनामृत है।

निश्चय से निश्चय-अर्थ की अपूर्व योजना तो सत्पुरुष के अंतर में निहित है। (पत्रांक : ६२, २२वाँ वर्ष)

दूसरा कुछ मत खोज, मात्र एक सत्पुरुष को खोजकर उसके चरणकमल में सर्वभाव अर्पण करके प्रवृत्ति किये जा। फिर यदि मोक्ष न मिले तो मुझसे लेना।

सत्पुरुष वही है कि जो रात दिन आत्मा के उपयोग में है, जिसका कथन शास्त्र में नहीं मिलता, सुनने में नहीं आता, फिर भी अनुभव में आ सकता है; अंतरंग स्पृहारहित जिसका गुप्त आचरण है।

एक सत्पुरुष को प्रसन्न करने में, उसकी सर्व इच्छाओं की प्रशंसा करने में, उसे ही सत्य मानने में पूरी जिंदगी बीत गई तो अधिक से अधिक पंद्रह भव में तू अवश्य मोक्ष में जायेगा।

(पत्रांक : ७६, २२वाँ वर्ष)

सत्संग के बिना ध्यान तरंगरूप हो जाता है।

संत के बिना अंत की बात का अंत नहीं पाया जाता।

(पत्रांक : १२८, २३वाँ वर्ष)

किसी एक सत्पुरुष को खोजे, और उसके चाहे जैसे वचनों में भी श्रद्धा रखे। (पत्रांक : १४३, २३वाँ वर्ष)

सत्संग के अभाव से चढ़ी हुई आत्मश्रेणी प्रायः पतित होती है। (दैनंदिनी : १२, २३वाँ वर्ष)

सत्पुरुष के एक-एक वाक्य में, एक-एक शब्द में अनंत आगम निहित हैं, यह बात कैसे होगी ? (पत्रांक : १६६, २४वाँ वर्ष)

निरंतर उदासीनता के क्रम का सेवन करना; सत्पुरुष की भक्ति में लीन होना; सत्पुरुषों के चरित्रों का स्मरण करना; सत्पुरुषों के लक्षण का चिंतन करना; सत्पुरुषों की मुखाकृति का हृदय से अवलोकन करना; उनके मन, वचन और काया की प्रत्येक चेष्टा के अद्‌भुत रहस्यों का वारंवार निदिध्यासन करना; और उनका मान्य किया हुआ सभी मान्य करना।

यह ज्ञानियों द्वारा हृदय में स्थापित, निर्वाण के लिए मान्य रखने योग्य, श्रद्धा करने योग्य, वारंवार चिंतन करने योग्य, प्रति क्षण और प्रति समय उसमें लीन होने योग्य परम रहस्य है। और यही सर्व शास्त्रों का, सर्व संतों के हृदय का और ईश्वर के घर का मर्म पाने का महामार्ग है। और इन सबका कारण किसी विद्यमान सत्पुरुष की प्राप्ति और उसके प्रति अविचल श्रद्धा है।

अधिक क्या लिखना ? आज, चाहे तो कल, चाहे तो लाख वर्ष में और चाहे तो उसके बाद में या उससे पहले, यही सूझनेपर, यही प्राप्त होनेपर छुटकारा है। सर्व प्रदेशों में मुझे तो यही मान्य है। (पत्रांक : १७२, २४वाँ वर्ष)

मार्ग सरल है, परंतु प्राप्ति का योग मिलना दुर्लभ है।

जो निरंतर भाव अप्रतिबद्धता से विचरते हैं ऐसे ज्ञानीपुरुष के चरणारविंद के प्रति अचल प्रेम हुए बिना और सम्यक्प्रतीति आये बिना सत्स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती, और आने पर अवश्य वह मुमुक्षु, जिसके चरणारविंद की उसने सेवा की है, उसकी दशा को पाता है। सर्व ज्ञानियों ने इस मार्ग का सेवन किया है, सेवन करते हैं और सेवन करेंगे। ज्ञानप्राप्ति इससे हमें हुई थी, वर्तमान में इसी मार्ग से होती है और अनागतकाल में भी ज्ञानप्राप्ति का यही मार्ग है। सर्व शास्त्रों का बोध-लक्ष्य देखा जाये तो यही है। और जो कोई भी प्राणी छूटना चाहता है उसे अखण्ड वृत्ति से इसी मार्ग का आराधन करना चाहिए। इस मार्ग का आराधन किये बिना जीव ने अनादि काल से परिभ्रमण किया है। जब तक जीव को स्वच्छंदरूपी अंधत्व है, तब तक इस मार्ग का दर्शन नहीं होता। (अंधत्व दूर होने के लिये) जीव को इस मार्ग का विचार करना चाहिये, दृढ़ मोक्षेच्छा करनी चाहिये, इस विचार में अप्रमत रहना चाहिये, तो मार्ग की प्राप्ति होकर अंधत्व दूर होता है, यह निःशंक मानें। अनादिकाल से जीव उलटे मार्ग पर चला है। यद्यपि उसने जप, तप, शास्त्राध्ययन इत्यादि अनंत बार किया है; तथापि जो कुछ भी अवश्य करने योग्य था, वह उसने किया नहीं है; जो हमने पहले ही बताया है। (पत्रांक : १९४, २४वाँ वर्ष)

दूसरी सभी प्रवृत्तियों की अपेक्षा जीव को योग्यता प्राप्त हो ऐसा विचार करना योग्य है; और उसका मुख्य साधन सर्व प्रकार के कामभोग से वैराग्य सहित सत्संग है।

जीव अपनी कल्पना से किसी भी प्रकार से सत् को प्राप्त नहीं कर सकता। सजीवनमूर्ति के प्राप्त होने पर ही सत् प्राप्त होता है, सत् समझ में आता है, सत् का मार्ग मिलता है और सत् पर ध्यान आता है। सजीवनमूर्ति के लक्ष के बिना जो कुछ भी किया जाता है, वह सब जीव के लिये बंधन है। यह मेरा हार्दिक अभिमत है। (पत्रांक : १९८, २४वाँ वर्ष)

❁

ज्ञान की प्राप्ति ज्ञानी के पास से होनी चाहिये। यह स्वाभाविकरूप से समझ में आता है, फिर भी जीव लोकलज्जा आदि कारणों से अज्ञानी का आश्रय नहीं छोड़ता, यही अनंतानुबंधी कषाय का मूल है।

❁

जब तक प्रत्यक्ष ज्ञानी की इच्छानुसार, अर्थात् आज्ञानुसार न चला जाये, तब तक अज्ञान की निवृत्ति होना संभव नहीं है।

❁

अनंत काल तक जीव स्वच्छंद से चलकर परिश्रम करे तो भी अपने आप ज्ञान प्राप्त नहीं करता; परंतु ज्ञानी की आज्ञा का आराधक अंतर्मुहूर्त में भी केवलज्ञान प्राप्त कर लेता है।

❁

शास्त्र में कही हुई आज्ञाएँ परोक्ष हैं और वे जीव को अधिकारी होने के लिए कही हैं; मोक्षप्राप्ति के लिये ज्ञानी की प्रत्यक्ष आज्ञा का आराधन करना चाहिये।

इस गुप्त तत्त्व का जो आराधन करता है, वह प्रत्यक्ष अमृत को पाकर अभय होता है। (पत्रांक : २००, २४वाँ वर्ष)

❁

`सत्' सत् ही है, सरल है, सुगम है, सर्वत्र उसकी प्राप्ति होती है; परंतु `सत्' को बतानेवाला `सत्' चाहिये।

(पत्रांक : २०७, २४वाँ वर्ष)

जिसके वचनबल से जीव निर्वाणमार्ग को पाता है, ऐसी सजीवनमूर्ति का योग पूर्वकाल में जीव को बहुत बार हो गया है; परंतु उसकी पहचान नहीं हुई है। जीव ने पहचान करने का प्रयत्न क्वचित् किया भी होगा, तथापि जीव में जड़ जमाई हुई सिद्धियोगादि, ऋद्धियोगादि और दूसरी वैसी कामनाओं से जीव की अपनी दृष्टि मलिन थी। यदि दृष्टि मलिन हो तो वैसी सत्मूर्ति के प्रति भी बाह्य लक्ष्य रहता है, जिससे पहचान नहीं हो पाती; और जब पहचान होती है, तब जीव को कोई ऐसा अपूर्व स्नेह आता है।

(पत्रांक : २१२, २४वाँ वर्ष)

यह लोक त्रिविध ताप से आकुलव्याकुल है। मृगतृष्णा के जल को लेने के लिये दौड़कर प्यास बुझाना चाहता है ऐसा दीन है। अज्ञान के कारण स्वरूप का विस्मरण हो जाने से उसे भयंकर परिभ्रमण प्राप्त हुआ है। वह समय समय पर अतुल खेद, ज्वरादि रोग, मरणादि भय और वियोग आदि दुःखों का अनुभव करता है, ऐसे अशरण जगत के लिये एक सत्पुरुष ही शरण है। सत्पुरुष की वाणी के बिना इस ताप और तृषा को दूसरा कोई मिटा नहीं सकता, ऐसा निश्चय है। इसलिये वारंवार उस सत्पुरुष के चरणों का हम ध्यान करते हैं।

एक अंश साता से लेकर पूर्णकामता तक की सर्व समाधि का

कारण सत्पुरुष ही है। इतनी अधिक समर्थता होने पर भी जिसे कुछ भी स्पृहा नहीं है, उन्मत्तता नहीं है, अहंता नहीं है, गर्व नहीं है, गौरव नहीं है, ऐसे आश्चर्य की प्रतिमारूप सत्पुरुष को हम पुनः पुनः नामरूप से स्मरण करते हैं।

हे पुरुषपुराण ! हम तेरे में और सत्पुरुष में कोई भेद ही नहीं समझते; तेरी अपेक्षा हमें तो सत्पुरुष ही विशेष लगता है, कारण कि तू भी उसके अधीन ही रहा है और हम सत्पुरुष को पहचाने बिना तुझे पहचान नहीं सके, यही तेरी दुर्घटता हम में सत्पुरुष के प्रति प्रेम उत्पन्न करती है। क्योंकि तू वश में होने पर भी वे उन्मत्त नहीं है। (पत्रांक : २१३, २४वाँ वर्ष)

ज्ञानीपुरुष और परमात्मा में अंतर ही नहीं है, और जो कोई अंतर मानता है, उसे मार्ग की प्राप्ति परम विकट है। ज्ञानी तो परमात्मा ही है, और उसकी पहचान के बिना परमात्मा की प्राप्ति नहीं हुई है, इसलिये सर्वथा भक्ति करने योग्य ऐसी देहधारी दिव्य मूर्ति-ज्ञानीरूप परमात्मा की - का नमस्कार आदि भक्ति से लेकर पराभक्ति के अंत तक एक लय से आराधन करना, ऐसा शास्त्र का आशय है। परमात्मा इस देहधारीरूप से उत्पन्न हुआ है ऐसी ही ज्ञानीपुरुष के प्रति जीव को बुद्धि होने पर भक्ति उदित होती है। (पत्रांक : २२३, २४वाँ वर्ष)

* सत्पुरुष में ही परमेश्वरबुद्धि, इसे ज्ञानियों ने परम धर्म कहा है, और यह बुद्धि परम दीनता को सूचित करती है, जिससे सर्व प्राणियों के प्रति अपना दासत्व माना जाता है और परम योग्यता

की प्राप्ति होती है। यह `परम दीनता' जब तक आवरित रही है तब तक जीव की योग्यता प्रतिबंधयुक्त होती है।

*(पाठांतर-तथारूप पहचान होने पर सद्गुरु में परमेश्वरबुद्धि रखकर उनकी आज्ञा से प्रवृत्ति करना इसे `परम विनय' कहा है। इससे परम योग्यता की प्राप्ति होती है। यह परम विनय जब तक नहीं आती तब तक जीव में योग्यता नहीं आती।)

(पत्रांक : २५४, २४वाँ वर्ष)

बिना नयन पावे नहीं, बिना नयन की बात।
सेवे सद्गुरु के चरन, सो पावे साक्षात्।।१।।
पायाकी ए बात है, निज छंदन को छोड़।
पिछे लाग सत्पुरुष के, तो सब बंधन तोड़।।६।।

(पत्रांक : २५८, २४वाँ वर्ष)

चमत्कार बताकर योग को सिद्ध करना, यह योगी का लक्षण नहीं है। सर्वोत्तम योगी तो वह है कि जो सर्व प्रकार की स्पृहा से रहित होकर सत्य में केवल अनन्य निष्ठा से सर्वथा `सत्' का ही आचरण करता है, और जिसे जगत विस्मृत हो गया है।

(पत्रांक : २६०, २४वाँ वर्ष)

अनंत काळथी आथड्यो, विना भान भगवान।
सेव्या नहि गुरु संतने, मूक्युं नहि अभिमान।।१५।।
संत चरण आश्रय विना, साधन कर्यां अनेक।
पार न तेथी पामियो, ऊगयो न अंश विवेक।।१५।।

(पत्रांक : २६४, २४वाँ वर्ष)

अब क्यौं न बिचारत है मनसें, कछु और रहा उन साधनसें?। बिन सद्गुरु कोय न भेद लहे, मुख आगल हैं कह बात कहे ? ।।४।।

(पत्रांक : २६५, २४वाँ वर्ष)

अनंतकाल से स्वरूप का विस्मरण होने से जीव को अन्यभाव साधारण हो गया है। दीर्घकाल तक सत्संग में रहकर बोधभूमि का सेवन होने से वह विस्मरण और अन्यभाव की साधारणता दूर होती हैं, अर्थात् अन्यभाव से उदासीनता प्राप्त होती हैं।

(पत्रांक : ३१९, २५वाँ वर्ष)

सम्यक्प्रकार से ज्ञानी में अखण्ड विश्वास रखने का फल निश्चय ही मुक्ति है। (पत्रांक : ३२२, २५वाँ वर्ष)

एक बड़ी निश्चय की बात तो मुमुक्षु जीव को यही करना योग्य है कि सत्संग जैसा कल्याण का कोई दूसरा बलवान कारण नहीं है, और उस सत्संग में निरंतर प्रतिसमय निवास चाहना, असत्संग का प्रतिक्षण विपरिणाम विचारना, यह श्रेयरूप है। बहुत बहुत करके यह बात अनुभव में लाने जैसी है। (पत्रांक : ३७५, २५वाँ वर्ष)

ज्ञानीपुरुष की अवज्ञा बोलना तथा उस प्रकार के प्रसंग में उमंगी होना, यह जीव के अनंत संसार बढ़ने का कारण है, ऐसा तीर्थंकर कहते हैं। उस पुरुष के गुणगान करना, उस प्रसंग में उमंगी होना और उसकी आज्ञा में सरल परिणाम से परम उपयोग-दृष्टि से वर्तन करना, इसे तीर्थंकर अनंत संसार का नाश करनेवाला कहते हैं।

(पत्रांक : ३९७, २५वाँ वर्ष)

ज्ञानीपुरुष का वैसा वैसा संग जीव को अनंतकाल में बहुत बार हो चुका है तथापि यह पुरुष ज्ञानी है, इसलिए अब उसका आश्रय ग्रहण करना, यही कर्तव्य है, ऐसा जीव को लगा नहीं है; और इसी कारण जीव का परिभ्रमण हुआ है ऐसा हमें तो दृढ़ता से लगता है। (पत्रांक : ४१६, २५वाँ वर्ष)

ज्ञानीपुरुष की पहचान न होने में मुख्यतः जीव के तीन महान दोष जानते हैं। एक तो `मैं जानता हूँ' `मैं समझता हूँ', इस प्रकार का जो मान जीव को रहा करता है, वह मान। दूसरा, ज्ञानीपुरुष के प्रति राग की अपेक्षा परिग्रहादिक में विशेष राग। तीसरा, लोकभय के कारण, अपकीर्तिभय के कारण और अपमानभय के कारण ज्ञानी से विमुख रहना, उनके प्रति जैसा विनयान्वित होना चाहिए वैसा न होना। ये तीन कारण जीव को ज्ञानी से अनजान रखते हैं; ज्ञानी के विषय में अपने समान कल्पना रहा करती है; अपनी कल्पना के अनुसार ज्ञानी के विचार का, शास्त्र का तोलन किया जाता है; थोड़ा भी ग्रंथसंबंधी वाचनादि ज्ञान मिलने से अनेक प्रकार से उसे प्रदर्शित करने की जीव को इच्छा रहा करती है। इत्यादि दोष उपर्युक्त तीन दोषों में समा जाते हैं, और इन तीनों दोषों का उपादान कारण तो एक `स्वच्छंद' नाम का महा दोष है; और उसका निमित्त कारण असत्संग है।

(पत्रांक : ४१६, २५वाँ वर्ष)

हे परमकृपालुदेव ! जन्म, जरा, मरणादि सर्व दुःखों का अत्यंत क्षय करनेवाला वीतराग पुरुष का मूलमार्ग आप श्रीमानने अनंत कृपा करके मुझे दिया, उस अनंत उपकार का प्रत्युपकार करने में मैं

सर्वथा असमर्थ हूँ, फिर आप श्रीमान कुछ भी लेने में सर्वथा निःस्पृह हैं; जिससे मैं मन, वचन, काया की एकाग्रता से आपके चरणारविंद में नमस्कार करता हूँ। आपकी परमभक्ति और वीतराग पुरुष के मूलधर्म की उपासना मेरे हृदय में भवपर्यंत अखण्ड जागृत रहें, इतना माँगता हूँ, वह सफल हो। ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

(पत्रांक : ४१७, २५वाँ वर्ष)

कोई भी जीव परमार्थ को मात्र अंशरूप से भी प्राप्त होने के कारणों को प्राप्त हो, ऐसा निष्कारण करुणाशील ऋषभादि तीर्थंकरों ने भी किया है; क्योंकि सत्पुरुषों के संप्रदाय की ऐसी सनातन करुणावस्था होती है कि समयमात्र के अनवकाश से समूचा लोक आत्मावस्था में हो, आत्मस्वरूप में हो, आत्मसमाधि में हो, अन्य अवस्था में न हो, अन्य स्वरूप में न हो, अन्य आधि में न हो; जिस ज्ञान से स्वात्मस्थ परिणाम होता है, वह ज्ञान सर्व जीवों में प्रगट हो, अनवकाशरूप से सर्व जीव उस ज्ञान में रुचियुक्त हों, ऐसा ही जिसका करुणाशील सहज स्वभाव है, वह सनातन संप्रदाय सत्पुरुषों का है। (पत्रांक : ४३०, २६वाँ वर्ष)

आत्मा को विभाव से अवकाशित करने के लिए और स्वभाव में अनवकाशरूप से रहने के लिए कोई भी मुख्य उपाय हो तो आत्माराम ऐसे ज्ञानीपुरुष का निष्काम बुद्धि से भक्तियोगरूप संग है। (पत्रांक : ४३२, २६वाँ वर्ष)

पूर्वकाल में अनेक शास्त्रों का विचार करने से, उस विचार के फलस्वरूप सत्पुरुष में जिनके वचन से भक्ति उत्पन्न हुई है, उन

तीर्थंकर के वचनों को नमस्कार करते हैं।

अनेक प्रकार से जीव का विचार करने से, वह जीव आत्मरूप पुरुष के बिना जाना जाये ऐसा नहीं है, ऐसी निश्चल श्रद्धा उत्पन्न हुई, उन तीर्थंकर के मार्गबोध को नमस्कार करते हैं।

(पत्रांक : ४३६, २६वाँ वर्ष)

सब परमार्थ के साधनों में परम साधन सत्संग है, सत्पुरुष के चरण के समीप का निवास है। सर्वकाल में उसकी दुर्लभता है, और ऐसे विषम काल में उसकी अत्यंत दुर्लभता ज्ञानीपुरुषों ने जानी है। (पत्रांक : ४४९, २६वाँ वर्ष)

पूर्वकाल में हुए अनंत ज्ञानी यद्यपि महाज्ञानी हो गये हैं, परंतु उससे जीव का कुछ दोष नहीं जायेगा, अर्थात् इस समय जीव में मान हो तो पूर्वकाल में हुए ज्ञानी कहने नहीं आयेंगे; परंतु हाल जो प्रत्यक्ष ज्ञानी विराजमान हों वे ही दोष को बतलाकर निकलवा सकते हैं। जैसे दूर के क्षीरसमुद्र से यहाँ के तृषातुर की तृषा शांत नहीं होती, परंतु एक मीठे पानी का कलश यहाँ हो तो उससे तृषा शांत होती है। (पत्रांक : ४६६, २६वाँ वर्ष)

सत्पुरुष की वाणी स्पष्टता से लिखी गयी हो तो भी उसका परमार्थ, जिसे सत्पुरुष का सत्संग आज्ञाकारिता से नहीं हुआ उसे समझ में आना दुष्कर होता है। (पत्रांक : ४७२, २६वाँ वर्ष)

जिसका सर्व दुःख से मुक्त होने का अभिप्राय हुआ हो, वह पुरुष आत्मा की गवेषणा करे, और आत्मा की गवेषणा करनी हो,

वह यम नियमादिक सर्व साधनों का आग्रह अप्रधान करके सत्संग की गवेषणा करे, तथा उपासना करे। सत्संग की उपासना करनी हो वह संसार की उपासना करने के आत्मभाव का सर्वथा त्याग करे। अपने सर्व अभिप्राय का त्याग करके, अपनी सर्व शक्ति से उस सत्संग की आज्ञा की उपासना करे। तीर्थंकर ऐसा कहते हैं कि जो कोई उस आज्ञा की उपासना करता है, वह अवश्य सत्संग की उपासना करता है। इस प्रकार जो सत्संग की उपासना करता है, वह अवश्य आत्मा की उपासना करता है, और आत्मा का उपासक सर्व दुःख से मुक्त होता है। (पत्रांक : ४९१, २७वाँ वर्ष)

जिसके वचन अंगीकार करने पर छः पदों से सिद्ध ऐसा आत्मस्वरूप सहज में प्रगट होता है, जिस आत्मस्वरूप के प्रगट होने से सर्व काल जीव संपूर्ण आनंद को प्राप्त होकर निर्भय हो जाता है, उन वचनों के कहनेवाले सत्पुरुष के गुणों की व्याख्या करने की शक्ति नहीं है; क्योंकि जिसका प्रत्युपकार नहीं हो सकता, ऐसा परमात्मभाव मानों कुछ भी इच्छा किये बिना मात्र निष्कारण करुणाशीलता से दिया; ऐसा होने पर भी जिसने दूसरे जीव को यह मेरा शिष्य है, अथवा मेरी भक्ति करनेवाला है, इसलिए मेरा है, इस प्रकार कभी नहीं देखा, ऐसे सत्पुरुष को अत्यंत भक्ति से वारंवार नमस्कार हो !

सत्पुरुषों ने सद्गुरु की जिस भक्ति का निरूपण किया है, वह भक्ति मात्र शिष्य के कल्याण के लिए कही है। जिस भक्ति को प्राप्त होने से सद्गुरु के आत्मा की चेष्टा में वृत्ति रहे, अपूर्व गुण दृष्टिगोचर होकर अन्य स्वच्छंद मिटे, और सहज में आत्मबोध हो, ऐसा जानकर जिस भक्ति का निरूपण किया है, उस भक्ति

को और उन सत्पुरुषों को पुनः पुनः त्रिकाल नमस्कार हो ! (पत्रांक : ४९३, २७वाँ वर्ष)

यद्यपि वर्तमानकाल में प्रगटरूप से केवलज्ञान की उत्पत्ति नहीं हुई, परंतु जिसके वचन के विचारयोग से शक्तिरूप से केवलज्ञान है, यह स्पष्ट जाना है, श्रद्धारूप से केवलज्ञान हुआ है, विचारदशा से केवलज्ञान हुआ है, इच्छादशा से केवलज्ञान हुआ है, मुख्य नय के हेतु से केवलज्ञान रहता है, जिसके योग से जीव सर्व अव्याबाध सुख के प्रगट करनेवाले उस केवलज्ञान को सहजमात्र में प्राप्त करने योग्य हुआ, उस सत्पुरुष के उपकार को सर्वोत्कृष्ट भक्ति से नमस्कार हो ! नमस्कार हो !! (पत्रांक : ४९३, २७वाँ वर्ष)

इस जीवने पूर्वकाल में जो जो साधन किये हैं, वे वे साधन ज्ञानीपुरुष की आज्ञा से हुए मालूम नहीं होते, यह बात संदेहरहित प्रतीत होती है। यदि ऐसा हुआ हो तो जीव को संसारपरिभ्रमण न होता। ज्ञानीपुरुष की जो आज्ञा है वह भवभ्रमण को रोकने के लिये प्रतिबंध जैसी है, क्योंकि जिन्हें आत्मार्थ के सिवाय दूसरा कोई प्रयोजन नहीं है और आत्मार्थ साधकर भी जिनकी देह प्रारब्धवशात् है, ऐसे ज्ञानीपुरुष की आज्ञा सन्मुख जीव को केवल आत्मार्थ में ही प्रेरित करती है; और इस जीवने तो पूर्वकाल में कोई आत्मार्थ जाना नहीं है; प्रत्युत आत्मार्थ विस्मरणरूप से चला आया है। वह अपनी कल्पना से साधन करे तो उससे आत्मार्थ नहीं होता, प्रत्युत आत्मार्थ का साधन करता हूँ ऐसा दुष्ट अभिमान उत्पन्न होता है कि जो जीव के लिए संसार का मुख्य हेतु है। जो बात स्वप्न में भी नहीं आती, उसे जीव मात्र व्यर्थ कल्पना

से साक्षात्कार जैसी मान ले तो उससे कल्याण नहीं हो सकता। उसी प्रकार यह जीव पूर्वकाल से अंधा चला आता हुआ भी यदि अपनी कल्पना से आत्मार्थ मान ले तो उसमें सफलता नहीं होती, यह बात बिलकुल समझ में आने जैसी है। इसलिए यह तो प्रतीत होता है कि जीव के पूर्वकालीन सभी अशुभ साधन, कल्पित साधन दूर होनेके लिए अपूर्व ज्ञान के सिवाय दूसरा कोई उपाय नहीं है, और वह अपूर्व विचार के बिना उत्पन्न होना संभव नहीं है, और वह अपूर्व विचार, अपूर्व पुरुष के आराधन के बिना दूसरे किस प्रकार से जीव को प्राप्त हो, यह विचार करते हुए यही सिद्धांत फलित होता है कि ज्ञानीपुरुष की आज्ञा का आराधन, यह सिद्धपद का सर्व श्रेष्ठ उपाय है; और यह बात जब जीव को मान्य होती है, तभी से दूसरे दोषों का उपशमन और निवर्तन शुरू होता है।

(पत्रांक : ५११, २७वाँ वर्ष)

जो सत्संग है वह काम को जलाने का बलवान उपाय है। सब ज्ञानीपुरुषों ने काम के जीतने को अत्यंत दुष्कर कहा है, यह एकदम सिद्ध है; और ज्यों ज्यों ज्ञानी के वचन का अवगाहन होता है, त्यों त्यों कुछ कुछ करके पीछे हटने से अनुक्रम से जीव का वीर्य बलवान होकर जीव से काम की सामर्थ्य का नाश होता है। जीवने ज्ञानीपुरुष के वचन सुनकर काम का स्वरूप ही नहीं जाना, और यदि जाना होता तो उसमें निपट नीरसता हो गयी होती।

(पत्रांक : ५११, २७वाँ वर्ष)

सत्पुरुष का योग होने के पश्चात् आत्मज्ञान कुछ दुर्लभ नहीं है। तथापि सत्पुरुष में, उनके वचनों में, उन वचनों के आशय में, जब तक प्रीति भक्ति न हो तब तक जीव में आत्म विचार

भी उदय होने योग्य नहीं है; और जीव को सत्पुरुष का योग हुआ है, ऐसा सचमुच उस जीव को भासित हुआ है, यों कहना भी कठिन है। (पत्रांक : ५२२, २७वाँ वर्ष)

जीव को उन साधनों की (सत्संग, सद्गुरु और सत्शास्त्रादि की) आराधना निजस्वरूप के प्राप्त करने के हेतुरूप ही है, तथापि जीव यदि वहाँ भी वंचनाबुद्धि से प्रवृत्ति करे तो कभी कल्याण नहीं हो सकता। वंचनाबुद्धि अर्थात् सत्संग, सद्गुरु आदि में सच्चे आत्मभाव से जो माहात्म्यबुद्धि होना योग्य है, वह माहात्म्यबुद्धि नहीं और अपने आत्मा में अज्ञानता ही रहती चली आयी है, इसलिए उसकी अल्पज्ञता, लघुता विचारकर अमाहत्म्यबुद्धि करनी चाहिए सो नहीं करना, तथा सत्संग, सद्गुरु आदि के योग में अपनी अल्पज्ञता, लघुता को मान्य नहीं करना यह भी वंचना बुद्धि है। वहाँ भी यदि जीव लघुता धारण न करे तो प्रत्यक्षरूप से जीव भवपरिभ्रमण से भय को प्राप्त नहीं होता, यही विचार करना योग्य है। जीव को यदि प्रथम यह लक्ष्य अधिक हो तो सब शास्त्रार्थ और आत्मार्थ का सहजता से सिद्ध होना संभव है। (पत्रांक : ५२६, २७वाँ वर्ष)

आत्महित के लिए सत्संग जैसा बलवान अन्य कोई निमित्त प्रतीत नहीं होता, फिर भी वह सत्संग भी जो जीव लौकिकभाव से अवकाश नहीं लेता, उसके लिए प्रायः निष्फल होता है, और सत्संग कुछ सफल हुआ हो, तो भी यदि लोकावेश विशेष-विशेष रहता हो तो उस फल के निर्मूल हो जानेमें देर नहीं लगती, और स्त्री, पुत्र, आरंभ तथा परिग्रह के प्रसंगमें से यदि निजबुद्धि छोड़ने का प्रयास

न किया जाये तो सत्संग के सफल होने का संभव कैसे हो ?
(पत्रांक : ५२८, २७वाँ वर्ष)

ज्ञानीपुरुष का सत्संग होने से, निश्चय होने से और उसके मार्ग का आराधन करने से जीव के दर्शनमोहनीय कर्म का उपशम या क्षय होता है, और अनुक्रम से सर्व ज्ञान की प्राप्ति होकर जीव कृतकृत्य होता है, यह बात प्रगट सत्य है।
(पत्रांक : ५४८, २८वाँ वर्ष)

ज्ञानी के सत्संग से अज्ञानी के प्रसंग की रुचि मंद हो जाये, सत्यासत्य का विवेक हो, अनंतानुबंधी क्रोधादि का नाश हो, अनुक्रम से सब रागद्वेष का क्षय हो जाय, यह संभव है; और ज्ञानी के निश्चय द्वारा यह अल्पकाल में अथवा सुगमता से हो, यह सिद्धांत है। (पत्रांक : ५४८, २८वाँ वर्ष)

विचार की निर्मलता से यदि यह जीव अन्यपरिचय से पीछे हटे तो सहज में अभी ही उसे आत्मयोग प्रगट हो जाये। असत्संग-प्रसंग का घिराव विशेष है, और यह जीव उससे अनादिकाल का हीनसत्त्व हुआ होने से उससे अवकाश प्राप्त करने के लिए अथवा उसकी निवृत्ति करने के लिए यथासंभव सत्संग का आश्रय करे तो किसी तरह पुरुषार्थ योग्य होकर विचारदशा को प्राप्त करे।
(पत्रांक : ५६९, २८वाँ वर्ष)

ज्ञानीपुरुष के चरण में मन को स्थापित किये बिना यह भक्तिमार्ग सिद्ध नहीं होता, जिससे जिनागम में पुनः पुनः ज्ञानी की आज्ञा

का आराधन करने का स्थान स्थानपर कथन किया है। ज्ञानीपुरुष के चरण में मन का स्थापित होना पहिले तो कठिन पड़ता है, परंतु वचन की अपूर्वता से, उस वचन का विचार करने से तथा ज्ञानी को अपूर्व द्रष्टि से देखने से मन का स्थापित होना सुलभ होता है। (पत्रांक : ५७२, २८वाँ वर्ष)

बोधबीज की प्राप्ति होने पर, निर्वाणमार्ग की यथार्थ प्रतीति होने पर भी उस मार्ग में यथास्थित स्थिति होने के लिए ज्ञानीपुरुष का आश्रय मुख्य साधन है; और वह ठेठ पूर्ण दशा होने तक है; नहीं तो जीव को पतित होने का भय है, ऐसा माना है। तो फिर अपने आप अनादि से भ्रांत जीव को सद्गुरु के योग के बिना निजस्वरूप का भान होना अशक्य है, इसमें संशय क्यों हो? जिसे निज स्वरूप का दृढ़ निश्चय रहता है, ऐसे पुरुष को प्रत्यक्ष जगतव्यवहार वारंवार मार्गच्युत करा देने वाले प्रसंग प्राप्त कराता है, तो फिर उससे न्यूनदशा में जीव मार्ग भूल जाय, इसमें आश्चर्य क्या है ? अपने विचार के बल से, सत्संग-सत्शास्त्र के आधार न हो ऐसे प्रसंग में यह जगतव्यवहार विशेष बल करता है, और तब वारंवार श्री सद्गुरु का माहात्म्य और आश्रय का स्वरूप तथा सार्थकता अत्यंत अपरोक्ष सत्य दिखायी देते हैं।

(पत्रांक : ५७५, २८वाँ वर्ष)

सर्व भाव से असंगता होना, यह सबसे दुष्कर से दुष्कर साधन है; और वह निराश्रयता से सिद्ध होना अत्यंत दुष्कर है। ऐसा विचारकर श्री तीर्थंकर ने सत्संग को उसका आधार कहा है, कि जिस सत्संग के योग से जीव को सहजस्वरूपभूत असंगता उत्पन्न

होती है। (पत्रांक : ६०९, २८वाँ वर्ष)

वह सत्संग भी जीव को कई बार प्राप्त होने पर भी फलवान नहीं हुआ, ऐसा श्री वीतराग ने कहा है, क्योंकि उस सत्संग को पहचानकर इस जीवने उसे परम हितकारी नहीं समझा, परमस्नेह से उसकी उपासना नहीं की, और प्राप्त का भी अप्राप्त फलवान होनेयोग्य संज्ञा से विसर्जन किया है, ऐसा कहा है। यह जो हमने कहा है उसी बात की विचारणा से हमारे आत्मा में आत्मगुण का आविर्भाव होकर सहज समाधिपर्यंत प्राप्त हुए, ऐसे सत्संग को मैं अत्यंत अत्यंत भक्ति से नमस्कार करता हूँ।

अवश्य इस जीव को प्रथम सर्व साधनों को गौण मानकर निर्वाण के मुख्य हेतुभूत सत्संग की ही सर्वार्पणता से उपासना करना योग्य है; कि जिससे सर्व साधन सुलभ होते हैं, ऐसा हमारा आत्मसाक्षात्कार है। (पत्रांक : ६०९, २८वाँ वर्ष)

उस सत्संग के प्राप्त होनेपर यदि इस जीव को कल्याण प्राप्त न हो तो अवश्य इस जीव का ही दोष है; क्योंकि उस सत्संग के अपूर्व, अलभ्य और अत्यंत दुर्लभ योग में भी उसने उस सत्संग के योग के बाधक अनिष्ट कारणों का त्याग नहीं किया।

(पत्रांक : ६०९, २८वाँ वर्ष)

मिथ्याग्रह, स्वच्छंदता, प्रमाद और इन्द्रियविषय की उपेक्षा न की हो तभी सत्संग फलवान नहीं होता, अथवा सत्संग में एक निष्ठा, अपूर्वभक्ति न की हो तो फलवान नहीं होता। यदि एक ऐसी अपूर्वभक्ति से सत्संग की उपासना की हो तो अल्पकाल में मिथ्याग्रहादि का

नाश हो और अनुक्रम से जीव सर्व दोषों से मुक्त हो जाता है। (पत्रांक : ६०९, २८वाँ वर्ष)

सत्संग की पहचान होना जीव को दुर्लभ है। किसी महान पुण्ययोग से उसकी पहचान होनेपर निश्चय से यही सत्संग, सत्पुरुष है, ऐसा साक्षीभाव उत्पन्न हुआ हो, वह जीव तो अवश्य ही प्रवृत्ति का संकोच करे; अपने दोषों को क्षण क्षण में, कार्य कार्य में और प्रसंग प्रसंग में तीक्ष्ण उपयोग से देखे; देखकर उन्हें परिक्षीण करे; और उस सत्संग के लिए देहत्याग करने का योग होता हो तो उसे स्वीकार करे; परंतु उससे किसी पदार्थ में विशेष भक्तिस्नेह होने देना योग्य नहीं है। तथा प्रमादवश रसगारव आदि दोषों से उस सत्संग के प्राप्त होने पर पुरुषार्थ धर्म मंद रहता है, और सत्संग फलवान नहीं होता, ऐसा जानकर पुरुषार्थवीर्य का गोपन करना योग्य नहीं है। (पत्रांक : ६०९, २८वाँ वर्ष)

सत्संग की अर्थात् सत्पुरुष की पहचान होने पर भी यदि वह योग निरंतर न रहता हो तो सत्संग से प्राप्त हुए उपदेश को ही प्रत्यक्ष सत्पुरुष के तुल्य समझकर विचार करना तथा आराधन करना कि जिस आराधन से जीव को अपूर्व सम्यक्त्व उत्पन्न होता है। (पत्रांक : ६०९, २८वाँ वर्ष)

ज्ञानीपुरुष का निश्चय होकर अंतर्भेद न रहे तो आत्मप्राप्ति एकदम सुलभ है, ऐसा ज्ञानी पुकारकर कह गये हैं, फिर भी लोग क्यों भूलते हैं ? (पत्रांक : ६४२, २८वाँ वर्ष)

निर्वाणमार्ग अगम अगोचर है, इसमें संशय नहीं है। अपनी शक्ति से, सद्गुरु के आश्रय के बिना उस मार्ग को खोजना अशक्य है; ऐसा वारंवार दिखायी देता है। इतना ही नहीं, किन्तु श्री सद्गुरुचरण के आश्रय से जिसे बोधबीज की प्राप्ति हुई हो ऐसे पुरुष को भी सद्गुरु के समागम का आराधन नित्य कर्तव्य है। जगत के प्रसंग देखते हुए ऐसा मालूम होता है कि वैसे समागम और आश्रय के बिना निरालंब बोध स्थिर रहना विकट है।

(पत्रांक : ६४७, २८वाँ वर्ष)

दृश्य को अदृश्य किया, और अदृश्य को दृश्य किया ऐसा ज्ञानीपुरुषों का आश्चर्यकारक अनंत ऐश्वर्यवीर्य वाणी से कहा जा सकने योग्य नहीं है। (पत्रांक : ६४८, २८वाँ वर्ष)

असंग आत्मस्वरूप सत्संग के योग से नितांत सरलता से जानना योग्य है, इसमें संशय नहीं है। सत्संग के माहात्म्य को सब ज्ञानीपुरुषों ने अतिशयरूप से कहा है, यह यथार्थ है। इसमें विचारवान को किसी तरह विकल्प होना योग्य नहीं है।

(पत्रांक : ६६८, २९वाँ वर्ष)

सर्व दुःख से मुक्त होने का सर्वोत्कृष्ट उपाय आत्मज्ञान को कहा है, यह ज्ञानपुरुषों का वचन सत्य है, अत्यंत सत्य है।

जब तक जीव को तथारूप आत्मज्ञान न हो तब तक बंधन की आत्यंतिक निवृत्ति नहीं होती, इसमें संशय नहीं है।

उस आत्मज्ञान के होने तक जीव को मूर्तिमान आत्मज्ञानस्वरूप सद्गुरुदेव का निरंतर आश्रय अवश्य करना योग्य है, इसमें संशय

नहीं है। उस आश्रय का वियोग हो तब आश्रयभावना नित्य कर्तव्य है। (पत्रांक : ६७०, २९वाँ वर्ष)

जो ज्ञानदशा अथवा वीतरागदशा है वह मुख्यतः दैहिक स्वरूप तथा दैहिक चेष्टा का विषय नहीं है, अंतरात्मगुण है, और अंतरात्मता बाह्य जीवों के अनुभव का विषय न होने से, तथा जगतवासी जीवों में तथारूप अनुमान करने के भी प्रायः संस्कार न होने से वे ज्ञानी या वीतराग को पहचान नहीं सकते। कोई जीव सत्समागम के योग से, सहज शुभकर्म के उदय से, तथारूप कुछ संस्कार प्राप्त कर ज्ञानी या वीतराग को यथाशक्ति पहचान सकता है।

तथापि सच्ची पहचान तो दृढ़ मुमुक्षुता के प्रगट होने पर, तथारूप सत्समागम से प्राप्त हुए उपदेश का अवधारण करने पर और अंतरात्मवृत्ति परिणमित होने पर जीव ज्ञानी या वीतराग को पहचान सकता है। जगतवासी अर्थात् जो जगतदृष्टि जीव हैं, उनकी दृष्टि से ज्ञानी या वीतराग की सच्ची पहचान कहाँ से हो ? जिस तरह अंधकार में पड़े हुए पदार्थ को मनुष्य चक्षु देख नहीं सकते, उसी तरह देह में रहे हुए ज्ञानी या वीतराग को जगतदृष्टि जीव पहचान नहीं सकता। जैसे अंधकार में पड़े हुए पदार्थ को मनुष्यचक्षु से देखने के लिए किसी दूसरे प्रकाश की अपेक्षा रहती है, वैसे जगतदृष्टि जीवों को ज्ञानी या वीतराग की पहचान के लिए विशेष शुभ संस्कार और सत्समागम की अपेक्षा होना योग्य है। यदि वह योग प्राप्त न हो तो जैसे अंधकार में रहा हुआ पदार्थ और अंधकार ये दोनों एकाकार भासित होते हैं, भेद भासित नहीं होता, वैसे तथारूप योग के बिना ज्ञानी या वीतराग और अन्य संसारी जीवों की एकाकारता

भासित होती है; देहादि चेष्टा से प्रायः भेद भासित नहीं होता। (पत्रांक : ६७४, २९वाँ वर्ष)

पूर्वकाल में ज्ञानी हो गये हों, और मात्र उनकी मुखवाणी रही हो तो भी वर्तमानकाल में ज्ञानीपुरुष यह जान सकते हैं कि यह वाणी ज्ञानीपुरुष की है; क्योंकि रात्रि-दिन के भेद की तरह अज्ञानी-ज्ञानी की वाणी में आशय-भेद होता है, और आत्मदशा के तारतम्य के अनुसार आशयवाली वाणी निकलती है। वह आशय, वाणी पर से, `वर्तमान ज्ञानीपुरुष' को स्वाभाविक दृष्टिगत होता है। और कहनेवाले पुरुष की दशा का तारतम्य ध्यानगत होता है। यहाँ जो `वर्तमान ज्ञानी' शब्द लिखा है, वह किसी विशेष प्रज्ञावान, प्रगट बोधबीजसहित पुरुष के अर्थ में लिखा है। ज्ञानी के वचनों की परीक्षा यदि सर्व जीवों को सुलभ होती तो निर्वाण भी सुलभ ही होता। (पत्रांक : ६७९, २९वाँ वर्ष)

दुर्लभ मनुष्यदेह भी पूर्वकाल में अनंतबार प्राप्त होने पर भी कुछ भी सफलता नहीं हुई; परंतु इस मनुष्यदेह की कृतार्थता है कि जिस मनुष्यदेह में इस जीवने ज्ञानीपुरुष को पहचाना, तथा उस महाभाग्य का आश्रय किया। जिस पुरुष के आश्रय से अनेक प्रकार के मिथ्या आग्रह आदि की मंदता हुई, उस पुरुष के आश्रयपूर्वक यह देह छूटे, यही सार्थकता है। जन्मजरामरणादि का नाश करनेवाला आत्मज्ञान जिसमें विद्यमान है, उस पुरुष का आश्रय ही जीव के जन्मजरामरणादि का नाश कर सकता है; क्योंकि वह यथासंभव उपाय है। संयोग-संबंध से इस देह के प्रति इस जीव का जो प्रारब्ध होगा उसके व्यतीत हो जाने पर इस देह का प्रसंग निवृत्त

होगा। इसका चाहे जब वियोग निश्चित है, परंतु आश्रयपूर्वक देह छूटे, यही जन्म सार्थक है, कि जिस आश्रय को पाकर जीव इस भव में अथवा भविष्य में थोड़े काल में भी स्वरूप में स्थिति करे।

(पत्रांक : ६९२, २९वाँ वर्ष)

भुजा द्वारा जो स्वयंभूरमणसमुद्र को तर गये, तरते हैं और तरेंगे, उन सत्पुरुषों को निष्काम भक्ति से त्रिकाल नमस्कार।

(पत्रांक : ६९६, २९वाँ वर्ष)

अहो ज्ञानीपुरुष की आशय-गंभीरता, धीरता और उपशम ! अहो ! अहो ! वारंवार अहो ! (पत्रांक : ६९७, २९वाँ वर्ष)

सत्पुरुष के वचन के यथार्थ ग्रहण के बिना प्रायः विचार का उद्भव नहीं होता; और सत्पुरुष के वचन का यथार्थ ग्रहण तभी होता है जब सत्पुरुष की `अनन्य आश्रयभक्ति' परिणत होती है, क्योंकि सत्पुरुष की प्रतीति ही कल्याण होने में सर्वोतम निमित्त है। प्रायः ये कारण परस्पर अन्योन्याश्रय जैसे हैं। कहीं किसीकी मुख्यता है, और कहीं किसीकी मुख्यता है, तथापि ऐसा तो अनुभव में आता है कि जो सच्चा मुमुक्षु हो, उसे सत्पुरुष की `आश्रयभक्ति', अहंभाव आदि के छेदन के लिए और अल्पकाल में विचारदशा परिणमित होने के लिए उत्कृष्ट कारणरूप होती है।

(पत्रांक : ७०६, २९वाँ वर्ष)

जे स्वरूप समज्या विना, पाम्यो दुःख अनंत।
समजाव्युं ते पद नमुं, श्री सद्गुरु भगवंत।।१।।

आत्मज्ञान समदर्शिता, विचरे उदयप्रयोग।
अपूर्व वाणी परमश्रुत, सद्‌गुरु लक्षण योग्य।।१०।।

प्रत्यक्ष सद्‌गुरु सम नहीं, परोक्ष जिन उपकार।
एवो लक्ष थया विना, ऊगे न आत्मविचार।।११।।

('आत्मसिद्धि', २९वाँ वर्ष)

❁

विषमभाव के निमित्त प्रबलता से प्राप्त होने पर भी जो ज्ञानीपुरुष अविषम उपयोग में रहे हैं, रहते हैं, और भविष्यकाल में रहेंगे उन सबको वारंवार नमस्कार। (पत्रांक : ७३५, ३०वाँ वर्ष)

❁

सच्चे अंतःकरण से विशेष सत्समागम के आश्रय से जीव को उत्कृष्ट दशा भी बहुत थोड़े समय में प्राप्त होती है।

(पत्रांक : ७८१, ३०वाँ वर्ष)

❁

सर्व जीव सुख की इच्छा करते हैं, परंतु कोई विरले पुरुष उस सुख के यथार्थ स्वरूप को जानते हैं।

जन्म, मरण आदि अनंत दुःखों के आत्यंतिक (सर्वथा) क्षय होने के उपाय को जीव अनादिकाल से नहीं जानता, उस उपाय को जानने और करने की सच्ची इच्छा उत्पन्न होने पर जीव यदि सत्पुरुष के समागम का लाभ प्राप्त करे तो वह उस उपाय को जान सकता है, और उस उपाय की उपासना करके सर्व दुःख से मुक्त हो जाता है।

ऐसी सच्ची इच्छा भी जीव को सत्पुरुष के समागम से ही प्राप्त होती है। ऐसा समागम, उस समागम की पहचान, प्रदर्शित

मार्ग की प्रतीति और उसी तरह चलने की प्रवृत्ति जीव को परम दुर्लभ है।

प्रत्यक्ष पुरुष का समागम और उनके आश्रय में विचरनेवाले मुमुक्षुओं को मोक्षसंबंधी सभी साधन प्रायः अल्प प्रयास से और अल्पकाल में सिद्ध हो जाते है; परंतु उस समागम का योग मिलना बहुत दुर्लभ है। उसी समागम के योग में मुमुक्षुजीव का चित्त निरंतर रहता है।

जीव को सत्पुरुष का योग मिलना तो सर्व काल में दुर्लभ है। उसमें भी ऐसे दुःषमकाल में तो वह योग क्वचित् ही मिलता है। विरले ही सत्पुरुष विचरते है। उस समागम का लाभ अपूर्व है, यों समझकर जीव को मोक्षमार्ग की प्रतीति कर, उस मार्ग का निरंतर आराधन करना योग्य है। (पत्रांक : ७८३, ३०वाँ वर्ष)

निवृत्तिमान भाव-परिणाम होने के लिए जीव को निवृत्तिमान, द्रव्य, क्षेत्र और काल प्राप्त करना योग्य है। शुद्ध समझ से रहित इस जीव को किसी भी योग से शुभेच्छा, कल्याण करने की इच्छा प्राप्त हो और निःस्पृह परम पुरुष का योग मिले तो ही इस जीव को भान आना संभव है।

उसके वियोग में सत्शास्त्र और सद्विचार का परिचय कर्तव्य है, अवश्य कर्तव्य है। (पत्रांक : ८१२, ३०वाँ वर्ष)

आत्मस्वभाव की निर्मलता होने के लिए मुमुक्षुजीव को दो साधन अवश्य ही सेवन करने योग्य हैं - सत्श्रुत और सत्समागम। प्रत्यक्ष सत्पुरुषों का समागम जीव को कभी कभी ही प्राप्त होता है, परंतु

यदि जीव सद्दृष्टिमान हो तो सत्श्रुत के बहुत काल के सेवन से होनेवाला लाभ प्रत्यक्ष सत्पुरुष के समागम से बहुत अल्पकाल में प्राप्त कर सकता है; क्योंकि प्रत्यक्ष गुणातिशयवान निर्मल चेतन के प्रभाववाले वचन और वृत्ति क्रिया-चेष्टित्व है। जीव को वैसा समागमयोग प्राप्त हो ऐसा विशेष प्रयत्न कर्तव्य है। वैसे योग के अभाव में सत्श्रुत का परिचय अवश्य ही करना योग्य है। जिसमें शांतरस की मुख्यता है, शांतरस के हेतु से जिसका समस्त उपदेश है, और जिसमें सभी रसों का शांतरसगर्भित वर्णन किया गया है, ऐसे शास्त्र का परिचय सत्श्रुत का परिचय है।

(पत्रांक : ८२५, ३१वाँ वर्ष)

जिज्ञासाबल, विचारबल, वैराग्यबल, ध्यानबल और ज्ञानबल वर्धमान होने के लिए आत्मार्थी जीव को तथारूप ज्ञानीपुरुष के समागम की उपासना विशेषतः करनी योग्य है। उसमें भी वर्तमानकाल के जीवों को उस बल की दृढ़ छाप पड़ जाने के लिए बहुत अंतराय देखने में आते हैं, जिससे तथारूप शुद्ध जिज्ञासुवृत्ति से दीर्घकालपर्यंत सत्समागम की उपासना करने की आवश्यकता रहती है। सत्समागम के अभाव में वीतरागश्रुत-परमशांतरसप्रतिपादक वीतरागवचनों की अनुप्रेक्षा वारंवार कर्तव्य है। चित्तस्थैर्य के लिए वह परम औषध है। (पत्रांक : ८५६, ३२वाँ वर्ष)

अहो सत्पुरुष के वचनामृत, मुद्रा और सत्समागम ! सुषुप्त चेतन को जागृत करनेवाले, गिरती वृत्ति को स्थिर रखनेवाले, दर्शनमात्र से भी निर्दोष अपूर्व स्वभाव के प्रेरक, स्वरूपप्रतीति, अप्रमत्त संयम और पूर्ण वीतराग निर्विकल्प स्वभाव के कारणभूत; - अंत में अयोगी

स्वभाव प्रगट करके अनंत अव्याबाध स्वरूप में स्थिति करानेवाले ! त्रिकाल जयवंत रहें !ॐ शांति: शांति: शांति:

(पत्रांक : ८७५, ३२वाँ वर्ष)

प्रारब्ध योग से जो बने वह भी शुद्ध स्वभाव के अनुसंधानपूर्वक होना योग्य है। महात्माओं ने निष्कारण करुणा से परमपद का उपदेश किया है, इसमें ऐसा मालूम होता है कि उस उपदेश का कार्य परम महान ही है। सब जीवों के प्रति बाह्य दया में भी अप्रमत्त रहने का जिसके योग का स्वभाव है, उसका आत्मस्वभाव सब जीवों को परमपद के उपदेश का आकर्षक हो, ऐसी निष्कारण करुणावाला हो, यह यथार्थ है। (पत्रांक : ८८२, ३२वाँ वर्ष)

सत्समागम निरंतर कर्तव्य है। महान भाग्य के उदय से अथवा पूर्वकाल के अभ्यस्त योग से जीव को सच्ची मुमुक्षुता उत्पन्न होती है, जो अति दुर्लभ है। वह सच्ची मुमुक्षुता बहुत करके महापुरुष के चरणकमल की उपासना से प्राप्त होती है, अथवा वैसी मुमुक्षुतावाले आत्मा को महापुरुष के योग से आत्मनिष्ठत्व प्राप्त होता है; सनातन अनंत ज्ञानीपुरुषों द्वारा उपासित सन्मार्ग प्राप्त होता है। जिसे सच्ची मुमुक्षुता प्राप्त हुई हो उसे भी ज्ञानी का समागम और आज्ञा अप्रमत्त योग संप्राप्त कराते हैं। मुख्य मोक्षमार्ग का क्रम इस प्रकार मालूम होता है। (पत्रांक : ८८७, ३२वाँ वर्ष)

जिसका माहात्म्य अचिंत्य है, ऐसा सत्संगरूपी कल्पवृक्ष प्राप्त होने पर जीव दरिद्र रहे, ऐसा हो तो इस जगत में वह ग्यारहवाँ आश्चर्य ही है। (पत्रांक : ९३६, ३३वाँ वर्ष)

जिन प्रवचन दुर्गम्यता, थाके अति मतिमान।
अवलंबन श्री सद्गुरु, सुगम अने सुखखाण।।४।।

(पत्रांक : ९५४, ३४वाँ वर्ष)

ज्ञानीपुरुष का अगम्य, अगोचर माहात्म्य है। उसकी जितनी पहचान होती है उतना उसका माहात्म्य लगता है; और उस उस प्रमाण में उसका कल्याण होता है। (उपदेश छाया : ४)

जैसे एक वर्षा से बहुत-सी वनस्पति फूट निकलती है, वैसे ज्ञानी की एक भी आज्ञा का आराधन करते हुए बहुत से गुण प्रगट हो जाते हैं। (उपदेश छाया : ५)

सत्संग, सत्पुरुष का योग अनंत गुणों का भण्डार है।
(उपदेश छाया : ५)

ज्ञानीपुरुषरूपी सूर्य के प्रगट होने के बाद सच्चे अध्यात्मी शुष्क रीति से प्रवृत्ति नहीं करते, भाव-अध्यात्म में प्रगटरूप से रहते हैं। आत्मा में सच्चे गुण उत्पन्न होने के बाद मोक्ष होता है। इस काल में द्रव्य-अध्यात्मी ज्ञानदग्ध बहुत हैं। (उपदेश छाया : ६)

लोग जब वर्षा आती है तब पानी टंकी में भर रखते हैं, वैसे मुमुक्षुजीव इतना सारा उपदेश सुनकर ज़रा भी ग्रहण नहीं करते, यह एक आश्चर्य है। उनका उपकार किस तरह हो ? सत्पुरुष की वर्तमान स्थिति की विशेष अद्भुतदशा है। सत्पुरुष के गृहस्थाश्रम की सारी स्थिति प्रशस्त है। सभी योग पूजनीय

हैं। (उपदेश छाया : ९)

सच्चे पुरुष का बोध प्राप्त होना अमृत प्राप्त होने के समान है। अज्ञानी गुरुओं ने बेचारे मनुष्यों को लूट लिया है। किसी जीव को गच्छ का आग्रही बनाकर, किसीको मत का आग्रही बनाकर, जिनसे तरा न जाये ऐसे आलंबन देकर, बिलकुल लूटकर दुविधा में डाल दिया है; मनुष्यत्व लूट लिया है। (उपदेश छाया : ११)

जिनसे मार्ग का प्रवर्तन हुआ है, ऐसे महापुरुष के विचार, बल, निर्भयता आदि गुण भी महान थे।

एक राज्य के प्राप्त करने में जो पराक्रम अपेक्षित है, उसकी अपेक्षा अपूर्व अभिप्रायसहित धर्मसंतति का प्रवर्तन करने में विशेष पराक्रम अपेक्षित है। (आभ्यंतर-परिणाम अवलोकन-संस्मरण-पोथी-१ : ७३)

अहो ! इस देह की रचना ! अहो चेतन ! अहो उसका सामर्थ्य ! अहो ज्ञानी ! अहो उनकी गवेषणा ! अहो उनका ध्यान ! अहो उनकी समाधि ! अहो उनका संयम ! अहो उनका अप्रमत्त भाव ! अहो उनकी परम जागृति ! अहो उनका वीतराग स्वभाव ! अहो उनका निरावरण ज्ञान ! अहो उनके योग की शांति ! अहो उनके वचन आदि योग का उदय !

(आभ्यंतर-परिणाम अवलोकन-संस्मरण-पोथी-२ : ११)

[`बहिनश्री के वचनामृत'में से उद्धृत रत्न]

पूज्य गुरुदेव की वाणी मिले वह एक अनुपम सौभाग्य है। मार्ग बतलानेवाले गुरु मिले और उनकी वाणी सुनने को मिली वह मुमुक्षुओं का परम सौभाग्य है। (वचनामृत : ६८)

शुद्ध आत्मा का स्वरूप बतलाने में गुरु के अनुभवपूर्वक निकले हुए वचन रामबाण जैसे हैं, उनसे मोह भाग जाता है और शुद्धात्मतत्त्व का प्रकाश होता है। (वचनामृत : १२४)

महान पुरुष की आज्ञा मानना, उनसे डरना, यह तो तुझे अपने अवगुण से डरने के समान है; उसमें तेरे क्रोध, मान, माया, लोभ, राग-द्वेष आदि अवगुण दबते हैं। सिर पर महान पुरुष के बिना तेरा कषाय के राग में - उसके वेग में बह जाना संभव है और इसलिये तू अपने अवगुण स्वयं नहीं जान सकेगा। महान पुरुष की शरण लेने से तेरे दोषों का स्पष्टीकरण होगा तथा गुण प्रगट होंगे। गुरु की शरण लेने से गुणनिधि चैतन्यदेव की पहिचान होगी।

(वचनामृत : १५७)

गुरु तेरे गुणों के विकास की कला बतलायँगे। गुरु-आज्ञा में रहना वह तो परम सुख है। कर्मजनित विभाव में जीव दब रहा है। गुरु की आज्ञा में वर्तने से कर्म सहज ही दब जाते हैं और

गुण प्रगट होते हैं। (वचनामृत : १५९)

संसार से भयभीत जीवों को किसी भी प्रकार आत्मार्थ का पोषण हो ऐसा उपदेश गुरु देते हैं। गुरु का आशय समझने के लिये शिष्य प्रयत्न करता है। गुरु की किसी भी बात में उसे शंका नहीं होती कि गुरु यह क्या कहते हैं ! वह ऐसा विचारता है कि गुरु कहते हैं वह तो सत्य ही है, मैं नहीं समझ सकता वह मेरी समझ का दोष है। (वचनामृत : १६१)

तू स्वयं मार्ग जानता नहीं है और जाननेवाले को साथ नहीं रखेगा, तो तू एक डग भी कैसे भरेगा ? तू स्वयं तो अंधा है, और यदि गुरुवाणी एवं श्रुत का अवलंबन नहीं रखेगा, तो अंतर में जो साधक का मार्ग है वह तुझे कैसे सूझेगा ? सम्यक्त्व कैसे होगा ? साधकपना कैसे आयगा ? केवलज्ञान कैसे प्रगट होगा ?

अनंत काल का अनजाना मार्ग गुरुवाणी एवं आगम के बिना ज्ञात नहीं होता। सच्चा निर्णय तो स्वयं ही करना है परंतु वह गुरुवाणी एवं आगम के अवलंबन से होता है। (वचनामृत : २१०)

अहा ! अमोघ-रामबाण समान-गुरुवचन ! यदि जीव तैयार हो तो विभाव टूट जाता है, स्वभाव प्रगट हो जाता है। अवसर चूकने जैसा नहीं है। (वचनामृत : २२५)

....तुझे शुद्धि बढ़ाना हो, दुःख से छूटने की भावना हो, तो अधिक गुणवाले या समान गुणवाले आत्मा के संग में रहना।

लौकिक संग तेरा पुरुषार्थ मंद होने का कारण होगा। विशेष गुणी का संग तेरे चैतन्यतत्त्व को निहारने की परिणति में विशेष वृद्धि का कारण होगा।

अचानक आ पड़े असत्संग में तो स्वयं पुरुषार्थ रखकर अलग रहे, परंतु स्वयं रसपूर्वक यदि असत्संग करेगा तो अपनी परिणति मंद पड़ जायगी !... (वचनामृत : २२९)

गुरु के हितकारी उपदेश के तीक्ष्ण प्रहारों से सच्चे मुमुक्षु का आत्मा जाग उठता है। (वचनामृत : २७३)

चेतकर रहना। `मुझे आता है' ऐसे जानकारी के गर्व के मार्ग पर नहीं जाना। विभाव के मार्ग पर तो अनादि से चल ही रहा है। वहाँ से रोकने के लिये सिर पर गुरु होना चाहिये। एक अपनी लगाम और दूसरी गुरु की लगाम हो तो जीव पीछे मुड़े।

(वचनामृत : ३३३)

आत्मार्थी को श्रीगुरु के सान्निध्य में पुरुषार्थ सहज ही होता है। मैं तो सेवक हूँ - यह दृष्टि रहना चाहिये। `मैं कुछ हूँ' ऐसा भाव हो तो सेवकपना छूट जाता है। सेवक होकर रहने में लाभ है। सेवकपने का भाव गुणसमुद्र आत्मा प्रगटने का निमित्त होता है।

(वचनामृत : ३३४)

....यहाँ (करांची में) गुरु के दर्शन नहीं, उनकी वाणी नहीं, सत्संग नहीं, जिससे यहाँ रहना कठिन हो गया है।....

(बहिनश्री चंपाबहिन अभिनंदन ग्रंथ : पृ-४८)

....निरंतर सद्गुरु और सत्संग ही चाहिए - यही भावना है।...

(बहिनश्री चंपाबहिन अभिनंदन ग्रंथ : पृ-७८)

....परद्रव्य में शरण और विश्राम लगता है वह यथार्थ नहीं है।

परद्रव्य के संबंध विच्छेद हेतु, पूर्ण वीतराग सत्स्वरूप प्राप्ति हेतु, सत् कैसे प्राप्त हो - उस ओर की रुचि जो करता है, तथा सत्पुरुष का शरण जो अंतरंग से स्वीकारता है - वह आत्मविश्राम पाता है।

(बहिनश्री चंपाबहिन अभिनंदन ग्रंथ : पृ-८३)

....जगत में सबसे अधिक आत्मकल्याण के तथा सत्पुरुष के प्रति प्रेम होना, वही लाभप्रद है।

(बहिनश्री चंपाबहिन अभिनंदन ग्रंथ : पृ-८४)

....सत्पुरुष के कहे हुए वाक्य, उनके व्याख्यान, उनका निवास हो वह पवित्र धाम, सत्संगमण्डल, उत्तम सद्-वांचन, श्रेष्ठ सद्-विचार, इन सबकी बातचीत (चर्चा) - इनमें, जैसे बने वैसे मन स्थिर हो, वह लाभरूप व कल्याणरूप है।...

(बहिनश्री चंपाबहिन अभिनंदन ग्रंथ : ८४)

...जिसे आत्मा समझ में नहीं आता, सत् तत्त्व समझ में नहीं आता उसे, जो `सत्' प्राप्त है ऐसे सत्पुरुष की भक्ति हृदय में विस्मरण योग्य नहीं है। उनकी आज्ञानुकूल वांचन, विचार, बातचीत (चर्चा) भी वही, जैसे बने वैसे रहे...वह लाभरूप है।

(बहिनश्री चंपाबहिन अभिनंदन ग्रंथ : पृ-८५)

....हे गुरुदेव ! आपसे दूर रहने का विरह सहन नहीं होता।

(बहिनश्री चंपाबहिन अभिनंदन ग्रंथ : पृ-९६)

[`द्रव्यदृष्टि-प्रकाश'में से उद्धृत रत्न]

पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी के वचनामृत

...प्रत्यक्ष तौर पर मेरा धार्मिक संग इस समय दूर-सा हो रहा है और मैं बहुत समयसे सोनगढ़ नहीं आ सका हूँ। यह कहना व्यर्थ है कि अंतरंग में, यहाँ होते हुए भी मुझे वहाँ की स्मृतियाँ, ऐसा कोई दिन न होगा कि, नहीं आती रहती हो। पूज्य गुरुदेव की स्मृति इस समय भी आ रही है व आँखों में गर्म आँसू आ रहे हैं कि उनके संग रहना नहीं हो रहा है। (पत्रांक : ४)

... परंतु अब तो वहाँ की (सोनगढ़ की) धूल के लिये भी तड़पना पड़ता है। गुरुदेव के दृष्टांत अनुसार भभकती भट्ठी में गिरनेका-सा प्रत्यक्ष अनुभव यहाँ एक दिन में ही मालूम होने लग गया है। धन्य हैं वहाँ के सर्व मुमुक्षु, जिनको सत्पुरुष का निरंतर संयोग प्राप्त है।.. (पत्रांक : ६)

....यहाँ तो पुण्ययोग ही ऐसा नहीं है कि वहाँ का लाभ शीघ्र-शीघ्र मिला करे। निवृत्ति के लिये जितना अधिक छटपटाता हूँ उतना ही अधिक इससे दूर-सा रहता हूँ, ऐसा योग अबके हो रहा है। कई बार तो फूट-फूट कर रोना-सा आ जाता है। शायद ही कोई दिवस ऐसा निकलता है कि बारंबार वहाँ का स्मरण नहीं आता होवे। (पत्रांक : ८)

[`परमागमसार'में से उद्धृत रत्न]

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के वचनामृत

समयसार गाथा-४ में श्रुत शब्द का प्रयोग है; जिसका हेतु यह है कि निज-अभिप्राय अनुसार अध्ययन करते जाएँ तो कार्यकारी नहीं। (मर्म) ज्ञानी से ही समझना चाहिए; वह कोई पराधीनता नहीं है; जिसकी पात्रता हो उसे ज्ञानी मिले बिना नहीं रहते। सत् (प्राप्ति) के लिए सत् का निमित्त चाहिए। अज्ञानी जीव धर्म-प्राप्ति में निमित्तभूत नहीं हो सकते। ६६२.

किसका समागम करने से सम्यक्-श्रद्धान आदि हों - आत्मवृद्धि हो; व किसकी संगति से मिथ्यात्व पुष्ट होगा; चार-गति का भ्रमण यों का यों बना रहेगा तथा दुर्गति का कारण होगा ? - इन दोनों की गंभीर परीक्षा कर, निर्णय करना योग्य है। ७२४.

पात्रता-बिना, गुरु-समागम नहीं मिलता व गुरुगम-बिना सत्य समझ में नहीं आता। कहा है कि अनंतकाल में सत्पुरुष की सेवा नहीं की - इसका अर्थ यह है कि स्वयं की पात्रता न थी, अतः निमित्तत्त्व का आरोप भी न हुआ। रुचिपूर्वक सत् नहीं सुना, परिचय तथा सेवन न हुआ। स्वयं की पात्रता-बिना सत्-निमित्त मिला होने पर भी वह निमित्तकारण न कहलाया । स्वतंत्रता-भासित हो, तो सच्चा ज्ञान हो। ७६७.

....वीतरागी, सर्वज्ञ-शासन के तत्त्व को समझानेवाले का सत्समागम मिलना अति दुर्लभ है। एकओर मंदकषाय तो करता है; परंतु दूसरीओर कुदेव-कुगुरु के संग में बहकर; विपरीत श्रद्धा का पोषण कर, मनुष्य-भव ही खो देता है। ``वीतरागी देव-गुरु का समागम मिलना महादुर्लभ है।'' धर्म का यथार्थ स्वरूप समझानेवाले ``ज्ञानी-पुरुषों का समागम महा-भाग्य से मिलता है।'' ७७६.

जिनके निमित्त से आत्मा की यथार्थ बात सुनी हो, जिनसे न्याय-समझा हो, उसका जो विनय नहीं करता - वह व्यवहार से भी अधम है, चोर है। ८९६.

अपनी चमड़ी उतारकर (गुरु-हेतु) जूते बनाएँ तो भी उपकार से ऋणी न हो सके-ऐसा तो गुरु आदि का उपकार होता है। इसके बजाय जो उनके उपकार का गोपन करता है वह तो अनंत संसारी है। (पूज्य गुरुदेवश्री काहनजीस्वामी)

जगत में मोहासक्ति के निमित्त-वैभव-विलास के स्थान, जिसे अंतःकरण में विशेष विशेष वैराग्य के उत्पादक (निमित्त) होते हैं - अहो ! वस्तुस्वरूप के ज्ञानवान ऐसे महात्मा वंदनीय हैं।

पात्र होना कठिन है। बातें करना सीख गया हो और ऐसा माने कि `मैं समझ गया हूँ, तो यह ठीक नहीं। बापू ! यह समझना तो अति दुष्कर है, कितनी पात्रता-कितनी सज्जनता - कितनी योग्यता हो तब जीव समझने योग्य होता है।'

- पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

श्री वीतराग सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्ट
उपलब्ध प्रकाशन (हिन्दी)

	ग्रंथ का नाम एवं विवरण	मूल्य
०१	अनुभव प्रकाश (ले. दीपचंदजी कासलीवाल)	-
०२	आत्मयोग (श्रीमद् राजचंद पत्रांक-४६९, ४९१, ६०९ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२०-००
०३	अनुभव संजीवनी (पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा लिखे गये वचनामृत्तोंका संकलन)	१५०-००
०४	आत्मसिद्धि शास्त्र पर प्रवचन (पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा)	५०-००
०५	आत्मअवलोकन	-
०६	बृहद द्रव्यसंग्रह	अनुपलब्ध
०७	द्रव्यदृष्टिप्रकाश (तीनों भाग-पूज्य श्री निहालचंदजी सोगानीजीके पत्र एवं तत्वचर्चा)	३०-००
०८	दूसरा कुछ न खोज (प्रत्यक्ष सत्पुरुष विषयक वचनामृतोंका संकलन)	०६-००
०९	दंसणमूलो धम्मा (सम्यक्त्व महिमा विषयक आगमोंके आधार)	०६-००
१०	धन्य आराधना (श्रीमद राजचंद्रजीकी अंतरंग अध्यात्म दशा पर ॅ पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा विवेचन)	-
११	दिशा बोध (श्रीमद राजचंद्र पत्रांक-१६६, ४४९, ५७२ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२५-००
१२	धन्य पुरुषार्थी	-
१३	धन्य अवतार	-
१४	गुरु गुण संभारणा (पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन द्वारा गुरु भक्ति)	१५-००
१५	गुरु गिरा गौरव	-
१६	जिणसासणं सव्वं (ज्ञानीपुरुष विषयक वचनामृतोंका संकलन)	०८-००
१७	कुटुम्ब प्रतिबंध (श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक-१०३,३३२,५१०, ५२८,५३७ एवं ३७४ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२५-००
१८	कहान रत्न सरिता (परमागमसारके विभिन्न वचनामृतों पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	३०-००
१९	मूलमें भूल (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके विविध प्रवचन)	०८-००
२०	मुमुक्षुता आरोहण क्रम (श्रीमद राजचंद्र पत्रांक-२५४ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	-

२१	मुक्तिका मार्ग (सत्ता स्वरूप ग्रन्थ पर पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचन)	१०-००
२२	निर्भ्रांत दर्शनकी पगडंडी (ले. पूज्य भाईश्री शशीभाई)	१०-००
२३	परमागमसार (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके १००८ वचनामृत्त)	-
२४	प्रयोजन सिद्धि (ले. पूज्य भाईश्री शशीभाई)	०४-००
२५	परिभ्रमणके प्रत्याख्यान (श्रीमद राजचंद्र पत्रांक-१९५, १२८, २६४ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२०-००
२६	प्रवचन नवनीत (भाग-१) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके खास प्रवचन)	२०-००
२७	प्रवचन नवनीत (भाग-२) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके खास प्रवचन)	२०-००
२८	प्रवचन नवनीत (भाग-३) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके ४७ नय के खास प्रवचन)	२०-००
२९	प्रवचन नवनीत (भाग-४) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके ४७ शक्ति के खास प्रवचन)	२०-००
३०	प्रवचन सुधा (भाग-१) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके प्रवचनसार परमागम पर धारावाही प्रवचन)	२०-००
३१	प्रवचन सुधा (भाग-२) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके प्रवचनसार परमागम पर धारावाही प्रवचन)	२०-००
३२	प्रवचनसार	अनुपलब्ध
३३	प्रंचास्तिकाय संग्रह	अनुपलब्ध
३४	सम्यक्ज्ञानदीपिका (ले. श्री धर्मदासजी क्षुल्लक)	१५-००
३५	ज्ञानामृत्त (श्रीमद् राजचंद्र ग्रंथमें से चयन किये गये वचनामृत्त)	-
३६	सम्यग्दर्शनके सर्वोत्तकृष्ट निवासभूत छ पदोंका अमृत पत्र (श्रीमद रादचंद्र पत्रांक-४९३ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	१८-००
३७	सिद्धिपका सर्वश्रेष्ठ उपाय (श्रीमद् राजचंद्र ग्रंथमें से पत्रांक-१४७,१९४, २००,५११,५६० एवं ८१९ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२५-००
३८	सुविधि दर्शन (सुविधि लेख पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	४०-००
३९	समयसार नाटक	अनुपलब्ध
४०	समयसार कलस टीका	अनुपलब्ध
४१	समयसार	अनुपलब्ध
४२	तत्त्वानुशीलन (भाग-१,२,३) (ले. पूज्य भाईश्री शशीभाई)	२०-००
४३	तत्थ्य	अनुपलब्ध
४४	विधि विज्ञान (विधि विषयक वचनामृत्तोंका संकलन)	१०-००
४५	वचनामृत्त रहस्य (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके नाईरौबीमें हुए प्रवचन	२०-००

-

વીતરાગ સત્‌સાહિત્ય પ્રસારક ટ્રસ્ટ
ઉપલબ્ધ પ્રકાશન (ગુજરાતી)

	ગ્રંથનું નામ તેમજ વિવરણ	મૂલ્ય
૦૧	અધ્યાત્મિકપત્ર (પૂજ્ય શ્રી નિહાલચંદ્રજી સોગાનીજીના પત્રો)	૦૨-૦૦
૦૨	અધ્યાત્મ સંદેશ (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના વિવિધ પ્રવચનો)	અનુપલબ્ધ
૦૩	આત્મયોગ (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૫૯૬, ૪૯૧, ૬૦૯ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૦૪	અનુભવ સંજીવની (પૂજ્ય ભાઈશ્રી દ્વારા લિખિત વચનામૃત્તોનું સંકલન)	૧૫૦-૦૦
૦૫	અધ્યાત્મ સુધા (ભાગ-૧) બહેનશ્રીના વચનામૃત ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૦૬	અધ્યાત્મ સુધા (ભાગ-૨) બહેનશ્રીના વચનામૃત ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૦૭	અધ્યાત્મ સુધા (ભાગ-૩) બહેનશ્રીના વચનામૃત ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૦૮	અધ્યાત્મ પરાગ	-
૦૯	બીજું કાંઈ શોધમા (પ્રત્યક્ષ સત્પુરુષ વિષયક વચનામૃત્તોનું સંકલન)	-
૧૦	બૃહદ દ્રવ્યસંગ્રહ પ્રવચન (ભાગ-૧) (દ્રવ્યસંગ્રહ ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના સળંગ પ્રવચનો)	-
૧૧	બૃહદ દ્રવ્યસંગ્રહ પ્રવચન (ભાગ-૨) (દ્રવ્યસંગ્રહ ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના સળંગ પ્રવચનો)	-
૧૨	ભગવાન આત્મા (દ્રષ્ટિ વિષયક વચનામૃત્તોનું સંકલન)	-
૧૩	દ્વાદશ અનુપ્રેક્ષા (શ્રીમદ્‌ ભગવત્‌ કુંદકુંદાચાર્યદેવ વિરચિત	૦૨-૦૦
૧૪	દ્રવ્યદ્રષ્ટિ પ્રકાશ (ભાગ-૩) (પૂજ્ય શ્રી નિહાલચંદજી સોગાની તત્ત્વચર્ચા)	૦૪-૦૦
૧૫	દસ લક્ષણ ધર્મ (ઉત્તમ ક્ષમાદિ દસ ધર્મો પર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીનાં પ્રવચનો)	૦૬-૦૦
૧૬	ધન્ય આરાધના (શ્રીમદ રાજચંદ્રજીની અંતરંગ અધ્યાત્મ દશા ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ દ્વારા વિવેચન)	૧૦-૦૦
૧૭	દિશા બોધ (શ્રીમદ્‌ રાજચંદ્રજી પત્રાંક-૧૬૬,૪૪૯,અને ૫૭૨ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ દ્વારા પ્રવચનો)	૧૦-૦૦
૧૮	ગુરુ ગુણ સંભારણા (પૂજ્ય બહેનશ્રીના શ્રીમુખેથી સ્ફુરિત ગુરુભક્તિ)	૦૫-૦૦
૧૯	ગુરુ ગિરા ગૌરવ (પૂજ્ય સૌગાનીજીની અંગત દશા ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૨૦	ગુરુ ગિરા ગૌરવ (ભાગ-૧) (દ્રવ્યદ્રષ્ટિ પ્રકાશ ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પત્રો પર સળંગ પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૨૧	ગુરુ ગિરા ગૌરવ (ભાગ-૨) (દ્રવ્યદ્રષ્ટિ પ્રકાશ ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પત્રો પર સળંગ પ્રવચનો)	૨૦-૦૦

૨૨	જિણસાસણં સત્વં (જ્ઞાનીપુરુષ વિષયક વચનામૃત્તોનું સંકલન)	૦૮-૦૦
૨૩	કુટુંબ પ્રતિબંધ (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૧૦૩, ૩૩૨, ૫૧૦, ૫૨૮, ૫૩૭ તથા ૩૭૪ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૨૩	કહાન રત્ન સરિતા (ભાગ-૧) (પરમાગમસારમાંથી ચૂંટેલા કેટલાક વચનામૃત્તો ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈનાં પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૨૪	કહાન રત્ન સરિતા (ભાગ-૨) (પરમાગમસારમાંથી ક્રમબદ્ધ પર્યાય વિષયક ચૂંટેલા કેટલાક વચનામૃત્તો ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈનાં પ્રવચનો)	૩૦-૦૦
૨૫	કાર્તિકેયાનુપ્રેક્ષા પ્રવચન (ભાગ-૧) કાર્તિકેયાનુપ્રેક્ષા ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૨૬	કાર્તિકેયાનુપ્રેક્ષા પ્રવચન (ભાગ-૨) કાર્તિકેયાનુપ્રેક્ષા ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૨૭	ક્રમબદ્ધપર્યાય	-
૨૮	મુમુક્ષતા આરોહણ ક્રમ (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૨૫૪ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૧૫-૦૦
૨૯	નિર્ભ્રાંત દર્શનની કેડીએ (લે. પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ)	૧૦-૦૦
૩૦	પરમાત્મપ્રકાશ (શ્રીમદ્ યોગીન્દ્રદેવ વિરચિત)	૧૫-૦૦
૩૧	પરમાગમસાર (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના ૧૦૦૮ વચનામૃત્ત)	૧૧-૨૫
૩૨	પ્રવચન નવનીત (ભાગ-૧) (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ખાસ પ્રવચનો)	અનુપલબ્ધ
૩૩	પ્રવચન નવનીત (ભાગ-૨) (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ખાસ પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૩૪	પ્રવચન નવનીત (ભાગ-૩) (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ૪૭ નય ઉપર ખાસ પ્રવચનો)	૩૫-૦૦
૩૫	પ્રવચન નવનીત (ભાગ-૪) (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ૪૭ નય શક્તિઓ ઉપર ખાસ પ્રવચનો)	૭૫-૦૦
૩૬	પ્રવચન પ્રસાદ (ભાગ-૧) (પંચાસ્તિકાયસંગ્રહ પર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના પ્રવચનો)	૬૫-૦૦
૩૭	પ્રવચન પ્રસાદ (ભાગ-૨) (પંચાસ્તિકાયસંગ્રહ પર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના પ્રવચનો)	-
૩૮	પ્રયોજન સિદ્ધિ (લે. પૂજ્યભાઈશ્રી શશીભાઈ)	૦૩-૦૦
૩૯	પથ પ્રકાશ (માર્ગદર્શન વિષયક વચનામૃત્તોનું સંકલન)	૦૬-૦૦
૪૦	પરિભ્રમણના પ્રત્યાખ્યાન (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૧૯૫, ૧૨૮ તથા ૨૬૪ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૪૧	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૧) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૪૦-૦૦
૪૨	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૨) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૮૫-૦૦
૪૩	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૩) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૪૪	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૪) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૪૦-૦૦
૪૫	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૫) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૪૬	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૬) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૪૭	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૭) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૨૦-૦૦
૪૮	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૮) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૨૦-૦૦

૪૯	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૯) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૨૦-૦૦
૫૦	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૧૦) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૨૦-૦૦
૫૧	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૧૧) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૨૦-૦૦
૫૨	પ્રવચનસાર	અનુપલબ્ધ
૫૩	પ્રચારિસ્તકાય સંગ્રહ	અનુપલબ્ધ
૫૪	પદ્મનંદીપંચવિશતી	-
૫૫	પુરુષાર્થ સિદ્ધિ ઉપાય	અનુપલબ્ધ
૫૬	રાજ હૃદય (ભાગ-૧) (શ્રીમદ રાજચંદ્ર ગ્રંથ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૫૭	રાજ હૃદય (ભાગ-૨) (શ્રીમદ રાજચંદ્ર ગ્રંથ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૫૮	રાજ હૃદય (ભાગ-૩) (શ્રીમદ રાજચંદ્ર ગ્રંથ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૫૯	સમ્યક્જ્ઞાનદીપિકા (લે. શ્રી ધર્મદાસજી ક્ષુલ્લક)	૧૫-૦૦
૬૦	જ્ઞાનામૃત્ત (શ્રીમદ રાજચંદ્ર ગ્રંથમાંથી ચૂંટેલા વચનામૃત્તો)	૦૬-૦૦
૬૧	સમ્યગ્દર્શનના નિવાસના સર્વોત્કૃષ્ટ નિવાસભૂત છ પદનો પત્ર (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૪૯૩ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૬૨	સિદ્ધપદનો સર્વશ્રેષ્ઠ ઉપાય (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૧૪૭, ૧૯૪, ૨૦૦, ૫૧૧, ૫૬૦ તથા ૮૧૯ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૬૩	સમયસાર દોહન (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજી સ્વામીના નાઈરોબીમાં સમયસાર પરમાગમ ઉપર થયેલાં પ્રવચનો)	૩૫-૦૦
૬૪	સુવિધિદર્શન (પૂજ્ય ભાઈશ્રી દ્વારા લિખિત સુવિધિ લેખ ઉપર તેમનાં પ્રવચન)	૨૫-૦૦
૬૫	સ્વરૂપભાવના (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૯૧૩, ૭૧૦ અને ૮૩૩ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૬૬	સમક્તિનું બીજ (શ્રીમદ રાજચંદ્ર ગ્રંથમાંથી સત્પુરુષની ઓળખાણ વિષયક પત્રાંક-ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૩૦-૦૦
૬૭	તત્ત્વાનુશીલન (પૂજ્ય ભાઈશ્રી દ્વારા લિખિત વિવિધ લેખ)	-
૬૮	વિધિ વિજ્ઞાન (વિધિ વિષયક વચનામૃત્તોનું સંકલન)	૦૭-૦૦
૬૯	વચનામૃત્ત રહસ્ય (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના નાઈરોબીમાં બહેનશ્રીના વચનામૃત્ત પર થયેલાં પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૭૦	વચનામૃત્ત પ્રવચન (ભાગ-૧)	-
૭૧	વચનામૃત્ત પ્રવચન (ભાગ-૨)	-
૭૨	વચનામૃત્ત પ્રવચન (ભાગ-૩)	-
૭૩	વચનામૃત્ત પ્રવચન (ભાગ-૪)	-
૭૪	યોગસાર	અનુપલબ્ધ
૭૫	ધન્ય આરાધક	-

वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्टमें से प्रकाशित हुई पुस्तकोंकी प्रत संख्या

वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्टमें से प्रकाशित हुई पुस्तकोंकी प्रत संख्या

०१	प्रवचनसार (गुजराती)	१५००
०२	प्रवचनसार (हिन्दी)	४२००
०३	पंचास्तिकायसंग्रह (गुजराती)	१०००
०४	पंचास्तिकाय संग्रह (हिन्दी)	२५००
०५	समयसार नाटक (हिन्दी)	३०००
०६	अष्टपाहुड (हिन्दी)	२०००
०७	अनुभव प्रकाश	२१००
०८	परमात्मप्रकाश	४१००
०९	समयसार कलश टीका (हिन्दी)	२०००
१०	आत्मअवलोकन	२०००
११	समाधितंत्र (गुजराती)	२०००
१२	बृहद द्रव्यसंग्रह (हिन्दी)	३०००
१३	ज्ञानामृत (गुजराती)	१०,०००
१४	योगसार	२०००
१५	अध्यात्मसंदेश	२०००
१६	पद्मनंदीपंचविंशती	३०००
१७	समयसार	३१००
१८	समयसार (हिन्दी)	२५००
१९	अध्यात्मिक पत्रो (पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी द्वारा लिखित)	३०००
२०	द्रव्यदृष्टि प्रकाश (गुजराती)	१०,०००
२१	द्रव्यदृष्टि प्रकाश (हिन्दी)	६६००
२२	पुरुषार्थसिद्दिउपाय (गुजराती)	६१००
२३	क्रमबद्धपर्याय (गुजराती)	८०००
२४	अध्यात्मपराग (गुजराती)	३०००
२५	धन्य अवतार (गुजराती)	३७००
२६	धन्य अवतार (हिन्दी)	८०००
२७	परमामगसार (गुजराती)	५०००

२८	परमागमसरा (हिन्दी)	४०००
२९	वचनामृत प्रवचन भाग-१-२	५०००
३०	निर्भृंत दर्शननी केडीए (गुजराती)	५०००
३१	निर्भृंत दर्शनकी पगडंडी (हिन्दी)	७०००
३२	अनुभव प्रकाश (हिन्दी)	२०००
३३	गुरुगुण संभारणा (गुजराती)	३०००
३४	जिण सासणं सव्वं (गुजराती)	२०००
३५	जिण सासणं सव्वं (हिन्दी)	२०००
३६	द्वादश अनुप्रेक्षा (गुजराती)	२०००
३७	दस लक्षण धर्म (गुजराती)	२०००
३८	धन्य आराधना (गुजराती)	१०००
३९	धन्य आराधना (हिन्दी)	१५००
४०	प्रवचन नवनीत भाग-१-४	५८५०
४१	प्रवचन प्रसाद भाग-१-२	२३००
४२	पथ प्रकाश (गुजराती)	२०००
४३	प्रयोजन सिद्धि (गुजराती)	३५००
४४	प्रयोजन सिद्धि (हिन्दी)	२५००
४५	विधि विज्ञान (गुजराती)	२०००
४६	विधि विज्ञान (हिन्दी)	२०००
४७	भगवान आत्मा (गुजरात+हिन्दी)	३५००
४८	सम्यक्ज्ञानदीपिका (गुजराती)	१०००
४९	सम्यक्ज्ञानदीपिका (हिन्दी)	१५००
५०	तत्त्वानुशीलन (गुजराती)	४०००
५१	तत्त्वानुशीलन (हिन्दी)	२०००
५२	बीजुं कांई शोध मा (गुजराती)	४०००
५३	दूसरा कुछ न खोज (हिन्दी)	२०००
५४	मुमुक्षुता आरोहण क्रम (गुजराती)	२५००
५५	मुमुक्षुता आरोहण क्रम (हिन्दी)	३५००
५६	अमृत पत्र (गुजराती)	२०००
५७	अमृत पत्र (हिन्दी)	२५००
५८	परिभ्रमणना प्रत्याख्यान (गुजराती)	१५००
५९	परिभ्रमणके प्रत्याख्यान (हिन्दी)	२०००
६०	आत्मयोग (गुजराती)	१५००

६१	आत्मयोग (हिन्दी)	३०००
६२	अनुभव संजीवनी (गुजराती)	१०००
६३	अनुभव संजीवनी (हिन्दी)	१०००
६४	ज्ञानामृत (हिन्दी)	२५००
६५	वचनामृत रहस्य	१०००
६६	दिशा बोध (हिन्दी-गुजराती)	३५००
६७	कहान रत्न सरिता (हिन्दी-गुजराती)	२५००
६८	प्रवचन सुधा (भाग-१)	१४००
६९	कुटुम्ब प्रतिबंध (हिन्दी-गुजराती)	३५००
७०	सिद्धपद का सर्वश्रेष्ठ उपाय (हिन्दी-गुजराती)	३०००
७१	गुरु गिरा गौरव (हिन्दी-गुजराती)	३५००
७२	आत्मसिद्धि शास्त्र पर प्रवचन	७५०
७३	प्रवचन सुधा (भाग-२)	७५०
७४	समयसार दोहन	७५०
७५	गुरु गुण संभारणा	७५०
७६	सुविधिदर्शन	१०००
७७	समकितनुं बीज	१०००
७८	स्वरूपभावना	१०००
७९	प्रवचन सुधा (भाग-३)	१०००
८०	प्रवचन सुधा (भाग-४)	१०००
८१	कार्तिकेयानुप्रेक्षा प्रवचन भाग-१	१०००
८२	कार्तिकेयानुप्रेक्षा प्रवचन भाग-२	१०००
८३	सुविधि दर्शन (हिन्दी)	१०००
८४	प्रवचन सुधा (भाग-५)	१०००
८५	द्रव्यसंग्रह प्रवचन (भाग-१)	१०००
८६	द्रव्यसंग्रह प्रवचन (भाग-२)	१०००
८७	वचनामृत रहस्य (हिन्दी)	१०००
८८	प्रवचन सुधा (भाग-६)	१०००
८९	राज हृदय (भाग-१)	१५००
९०	राज हृदय (भाग-२)	१५००
९१	अध्यात्मसुधा (भाग-१)	१०००
९२	अध्यात्मसुधा (भाग-२)	१०००

९३	गुरु गिरा गौरव (भाग-१)	१०००
९४	अध्यात्म सुधा (भाग-३)	१०००
९५	प्रवचन सुधा (भाग-७)	७५०
९६	प्रवचन सुधा (भाग-८)	७५०
९७	राज हृदय (भाग-३)	७५०
९८	मुक्तिनो मार्ग (गुजराती(	१०००
९९	प्रवचन नवनीत (भाग-३)	१०००
१००	प्रवचन नवनीत (भाग-४)	१०००
१०१	प्रवचन सुधा (भाग-९)	७५०
१०२	गुरु गिरा गौरव (भाग-२)	७५०
१०३	प्रवचन सुधा (भाग-२) हिन्दी	१०००
१०४	प्रवचन सुधा (भाग-१०) (गुजराती)	७५०
१०५	प्रवचन सुधा (भाग-११) (गुजराती)	७५०
१०६	धन्य आराधक (गुजराती)	७५०

पाठकों के लिये